TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182995
UNIVERSAL LIBRARY

सांस्कृतिक पुनरुत्थान

—लेखक—

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

HL94.5
S24S

—अनुवादक—

श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द सरस्वती

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H294.5 S24S Accession No. H3480

Author सरस्वती, शिवानन्द.

Title सांस्कृतिक पुनरुत्थान, अनु. ज्योतिर्यानन्द सरस्वती, 1961

This book should be returned on or before the date last marked below.

सांस्कृतिक पुनरुत्थान

लेखक : श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनुवादक : श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द सरस्वती

श्री शिवानन्द साहित्य प्रसार समिति

शिवानन्द नगर, ऋषिकेश (हिमालय)

प्रकाशक :

अध्यक्ष—शिवानन्द साहित्य प्रसार समिति
शिवानन्द नगर, ऋषिकेश (हिमालय)

प्रथम संस्करण (अंग्रेजी में) १९५७
प्रथम संस्करण (हिन्दी में) १९६१

मूल्य १) रु० (भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित)

दिव्य जीवन संघ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : योग वेदान्त आरण्य एकैडेमी प्रेस,
पो० औ०—शिवानन्द नगर,
ऋषिकेश, हिमालय।

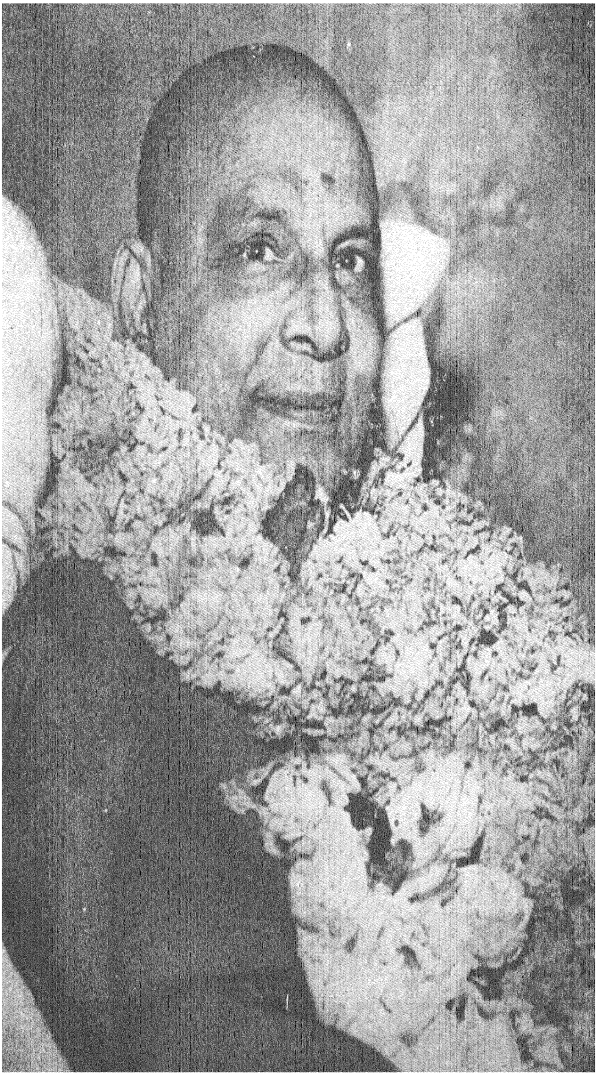

HIS HOLINESS SRI SWAMI SIVANANDA SARASWATI

प्रकाशक का वक्तव्य

विगत वर्ष ऋषिकेश में भारत साधु समाज के एक सम्मेलन का उद्घाटन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने किया था। उसके अनन्तर माननीय श्री गुलजारी लाल नन्दा, भारत सरकार के योजना मंत्री, ने स्वामी जी से मिलकर यह प्रस्तावना की कि यदि श्री स्वामी जी महाराज द्वारा नैतिक एवं आध्यात्मिक पुनरुत्थान की ओर कोई पुस्तक प्रकाशित हो तो उससे भारत साधु समाज के कार्य में बड़ी सहायता प्राप्त होगी। इस सलाह को स्वामी जी ने शीघ्र ही कार्यान्वित किया; यह पुस्तक उसी का फल है।

उस सुअवसर पर श्री नन्दा जी ने यह भाव व्यक्त किया "स्वामी जी के पास महान् आध्यात्मिक भण्डार है, आध्यात्मिक ज्ञान का खजाना है, उससे जितना भी अधिक आप चाहें प्राप्त कर सकते हैं"। यही हमारी भी प्रार्थना है।

—प्रकाशक

प्रस्तावना

हमारे पूर्वजों को आधुनिक कुरीतियों एवं दोषों जैसे चोर बाजारी, घूसखोरी को देख बड़ा ही आश्चर्य होता होगा। ये सारी राक्षसी वृत्तियां हमारी ही सृष्टि हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से च्युत होने के कारण ही इन दोषों का सृजन हुआ है। भौतिकवादी दृष्टिकोण, विलासमय जीवन के प्रति प्रेम ही इन सारी बुराइयों का मूल है। लोगों में विलासिता के प्रति होड़ लगी है। अर्थसंकट, परमाणु बम का निर्माण तथा विनाश के अन्य साधन— ये सभी मानवी अभिमान, लोभ ईर्ष्या, सन्देह तथा घृणा के परिणाम हैं। एक राष्ट्र दूसरे को नष्ट करना चाहता है। अधिकाधिक विध्वंसकारी शक्ति प्राप्त करने के लिये होड़ लगी हुई है। सबों के मुख पर यही चिन्ता छाई हुई है कि इन बुराइयों के लिए कोई उपचार है अथवा नहीं। परन्तु किसी में भी इन बुराइयों को रोकने के लिए साहस तथा श्रद्धा नहीं। हर राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों की ओर देखता है, हर मनुष्य दूसरे मनुष्यों से अपेक्षा रखता है, इस प्रकार बुराइयां बनी रहती हैं। हमें स्वयं इन बुराइयों को दूर करने के लिए कटिबद्ध होना होगा। हर व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार इस ओर संलग्न होना होगा।

जीवन के दृष्टिकोण को परिवर्त्तित करना इस ओर प्रथम कदम है। सारे भौतिकवादी विचार तथा दृष्टिकोण को बदल देना होगा। सारे देशों एवं समाजों में जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा का संचार करना होगा। सरल जीवन तथा उच्च विचार द्वारा इसका अधिकाधिक प्रसार करना होगा। हमारे पूर्वज इसी आदर्श पर चलते थे। वे

संसार की सारी बुराइयों की जड़ लोभ तथा भय को संन्यास द्वारा ही विनष्ट करते थे।

इसके साथ ही बाल्यावस्था से ही हर व्यक्तियों के भीतर निष्काम्य सेवा की भावना भरनी होगी। इस स्थल पर धर्म नीति तथा समाजशास्त्र से आ मिलता है, क्योंकि धर्म यह बतलाता है कि सारे जगत में एक आत्मा ही परिव्याप्त है। अतः दूसरों के लिए जो भी सेवा की गई उसये स्वयं को ही लाभ प्राप्त होगा। जितना ही अधिक हम मानवी कर्मों के उन्नत आधार को पहचानेंगे तथा उसका साक्षात्कार करेंगे उतना ही अधिक हम पूर्णता तथा ईश्वरत्व की ओर द्रुत गति से अग्रसर होंगे।

अधिकार पर बल न देकर कर्तव्य पर बल देना होगा। जातिवाद, राष्ट्रवाद आदि सारे वाद स्वार्थ रूपी राक्षस के ही विभिन्न सिर है। इनकी जगह व्यापक, सार्वभौमवाद को स्थापित करना होगा। राष्ट्रीय सीमाएं शनैः शनैः विलीन हो जायेंगी। धर्म तथा भाषा समाज तथा आचार-शास्त्र, संस्कृति तथा राजनीति– इन सबों के विभेद विनष्ट हो जाने चाहिये तथा सबों में एकता एवं समरसता का प्रसार होना चाहिए।

दूसरे राष्ट्र भले ही इस अभीष्ट की प्रतीक्षा करते रहें। हमें साहसपूर्वक इस कार्य को आरम्भ कर देना चाहिये। सर्वप्रथम हम अपनी बुराइयों को स्वतः दूर करें, सारे संकीर्ण सीमारेखाओं को नष्ट कर हम अपने हृदय को विश्वात्म एवं व्यापक बनाये रखें। हम अपने कर्मों तथा उनके परिणामों द्वारा यह प्रमाणित कर दें कि हम औपनिषदिक ऋषियों की सन्तान हैं। हमारी पुण्य भूमि हमें अधिकाधिक प्रकाश, स्वतंत्रता एवं पूर्णता की ओर मार्ग प्रदर्शित करे।

सबों के मन तथा हृदयों में सच्चाई, सदाचार तथा नीति की भावनाओं को भरकर प्राचीन संस्कृति का पुनर्जागरण करना ही हमारे देश में सर्व प्रथम सामाजिक कर्त्तव्य है। इस महान् समस्या को दूर करने के लिए हमें स्तूपों के शिला-लेख से कुछ अधिक प्रयास करना पड़ेगा। आधुनिक साधनों के द्वारा आधुनिक मन पर प्रभाव डालना होगा। हमारे स्तूप प्राचीन समृद्धि के स्मारक हैं। परन्तु वे हमारी आधुनिक समस्याओं के निवारक नहीं।

पुस्तकों तथा परिपत्रों द्वारा सदाचारमय जीवन की महिमा एवं आवश्यकता के ज्ञान का प्रसार करना समाज में नैतिक जेतना को जागृत करने का एकमेव साधन है। परन्तु इसके साथ ही अन्य साधनों को भी काम में लाना होगा। तभी हम शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

इसके लिए विद्यालयों तथा कालेजों के द्वारा कार्य करना अधिक प्रभावशाली रहेगा। विद्यालयों में नैतिक शिक्षण अनिवार्य होना चाहिये। इस ओर शिक्षकों को भी विशेष प्रशिक्षा मिलनी चाहिए तथा उन्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि विद्यार्थी, उनके दैनिक जीवन में सदाचार की अपेक्षा रखेंगे तथा क्लास के प्रवचन पर ही निर्भर नहीं रहेंगे। तात्पर्य यह कि शिक्षकों को विद्यार्थियों के लिए आदर्श बनना होगा। हर विद्यालय को प्रातः तथा दोपहर के उपरान्त नैतिक-शिक्षा के लिए आधा घंटा देना चाहिये। विद्यार्थियों के ऊपर ही समस्त विश्व का भाग्य निर्भर है। अतः नैतिक शिक्षा के महत्व को वैयक्तिक जीवन एवं सामूहिक जीवन के लिए अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। स्कूल के प्रारम्भ तथा अन्त में विशेष प्रकार की प्रार्थना हो तो और भी अच्छा है।

स्कूलों में सुधार लाना सुधार कार्य का आवश्यक अंग है। इससे सुधार कार्य का तिहाई भाग सम्पादित हो जाता है। विद्यार्थियों के लिए गृह के वातावरण बाह्य जगत की वस्तु-स्थिति तथा विद्यालय की शिक्षा एक समान ही महत्त्व रखती हैं। यदि पुस्तक की दुकानों में अश्लील पुस्तकें न रखी जायं तो विद्यार्थियों को मन की शुद्धि बनाए रखने में बड़ी सहायता मिलेगी। अश्लील चित्रों, साहित्यों तथा चित्रपटों को बहिष्कृत कर देना चाहिये। चलचित्रों में विशेष सुधार की आवश्यकता है। अश्लील चलचित्र युवकों के मन में गहरी छाप डालते हैं। इन चलचित्रों के निर्माता को अच्छे, सामाजिक तथा धार्मिक चित्र बनाने चाहिये। शनैः शनैः तम्बाकू, चाय, काफी आदि उत्तेजक पदार्थों के सेवन को उठाने का प्रयास करना चाहिये। शराब खोरी बन्द करना इस ओर प्रथम तथा प्रमुख कदम है।

गृह की व्यवस्था अनुकूल होनी चाहिए। सयाने व्यक्तियों में सुधार लाने के लिए अधिक सावधानी की आवश्यकता है। नियमित प्रचार, सायं सत्संग, प्रातः सत्संग आदि के द्वारा उनको बुराई से दूर किया जा सकता है।

सुधार कार्य की ओर साधु तथा संन्यासीगण सामान्य रूप से तथा सामाजिक नेतागण विशेष रूप से सरकार को सहायता देते हुए कार्य कर सकते हैं। दूसरों को प्रशिक्षित करने से पहले स्वयं को प्रशिक्षित कर लेना होगा। वैयक्तिक उदाहरण के आधार पर ही दूसरों में सुधार लाना सम्भव है

इसमें मुझे संदेह नहीं कि यह समस्या कितनी ही जटिल क्यों न हो ईश्वर अवश्य ही हमारे देशवासियों के हृदय में नैतिक एवं आध्यात्मिक जागरण लावेगा। हमारा वास्तविक स्वरूप आध्यात्मिक है। भारतीय मूलतः आध्यात्मिक व्यक्ति होता है। ये सारे दोष अज्ञान मूलक हैं ये अवश्य ही दूर हो जायेंगे। ★

जगत की वर्त्तमान सांस्कृतिक प्रणाली में
विद्यार्थियों का स्थान

जब कभी मुझे विद्यार्थियों को प्रवचन देने का सुअवसर प्राप्त होता है, मैं अतीव प्रसन्नता का अनुभव करता हूं। क्योंकि मुझे विद्यार्थियों की अनन्त क्षमताओं में पूर्ण विश्वास है। अपने ७० वर्षों के अनेक घटनामय जीवन में विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करने, उनमें आध्यात्मिक चेतना को भरने की ओर मेरी आंतरिक प्रवृत्ति का मैं संवरण नहीं कर सकता। इस लेख में विश्व की सांस्कृतिक प्रणाली में विद्यर्थियों के महत्व पर मैं कुछ प्रकाश डालूंगा।

हमारा युग अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का युग है। आज विभिन्न राष्ट्र तथा देश व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक उन्नति के कारण एक दूसरे के साथ पूर्णतः सम्बद्ध हैं। सिद्धांतों का संगम जारी है। कला तथा साहित्य में नित्य नये प्रवाह चल रहे हैं ऐसे कुछ ही विद्यार्थी होंगे जिन्हें आधुनिक संस्कृतिक पद्धति का परिज्ञान न हो। इस संस्कृति के कुछ बुरे प्रभावों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। जिन विद्यार्थियों में आशा तथा उत्साह है, जो गम्भीर सांस्कृतिक तथा ज्ञान से आलोकित जीवन व्यतीत करना चाहते हैं उन्हें इससे अवगत होना चाहिए।

आधुनिक सभ्यता तथा संस्कृति ने मानव जीवन में तथा जगत की वर्त्तमान स्थिति में संकट उपस्थित किया है। सभी विद्वान जन आज यह अनुभव करने लगे हैं कि आधुनिक सभ्यता अथवा संस्कृति में दुख, उद्वेग, अनिश्चितता, निराशा मन की अशांति, निराशावादिता, पलायनवादिता तथा शाश्वत तत्त्वों की उपेक्षा का बोलबाला है। भौतिक आर्थिक एवं

राजनैतिक मूल्यों की प्रधानता तथा आध्यात्मिक मूल्यों के ह्रास के कारण आज के युग में सन्देह एवं अशान्ति का वातावरण छाया हुआ है। विद्यार्थियों को केवल विश्वविद्यालयों के अध्ययन अथवा विज्ञान तक ही अपनी जिज्ञासा नहीं सीमित करनी चाहिये। उन्हें उन्नत, आध्यात्मिक तत्वों का भी अनुसन्धान करना चाहिए जिनसे वर्तमान युग की विरोधी शक्तियों के होते हुए भी मानव जाति में क्रमशः जीवन की मूलभूत समस्याओं के समाधान के लिए गम्भीर समझ तथा सन्मति का विकास हो सके। विशेषतः वेदान्त जैसे दर्शन के प्रसार द्वारा लोगों के जीवन में आध्यात्मिक चेतना संचरित करने में सहायता मिलेगी। वे इसका अनुभव करने लगेंगे कि वे स्वरूपत आध्यात्मिक चेतना तथा शक्ति के केन्द्र हैं, वे अनेकानेक क्षमताओं, सम्भावनाओं तथा शक्तियों के धाम हैं तथा वे अपनी सारी शक्ति को इन क्षमताओं के जागरण तथा उनके द्वारा वास्तविक संस्कृति के सृजन में लगा देंगे।

यह केवल शुभ कामना अथवा प्रस्तावना मात्र नहीं है। परन्तु इसके कार्यान्वित करने पर इसके शुभ परिणाम शीघ्र ही प्राप्त होंगे। मेरा उद्देश्य विद्यार्थियों की महत्वाकांक्षा को जाग्रत करना है जिससे वे महान् बन कर जगत को सन्मार्ग दिखावें, आत्मविकास द्वारा शुद्ध आनन्द का अनुसन्धान करें नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति द्वारा अपने जीवन को सम्पन्न बनावें। अपने विचार तथा संकल्प-बल द्वारा उन्हें अपनी विद्या तथा विज्ञान को अपने नैतिक जीवन का स्वभाव बना देना होगा। अपने विशिष्ट क्षेत्र में उनको विकसित करना होगा। अपने वैयक्तिक जीवन के विकास, जागरण, पूर्णता तथा सामाजिक अभिव्यक्ति द्वारा उन्हें जनता के जीवन में शांति, बल, शाश्वत आनन्द तथा अबाध उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करना होगा। ★

भारत की प्राचीन संस्कृति

विश्व के राष्ट्रों की श्रेणी में एक राष्ट्र की भांति, भारत को प्राचीन काल से ही अपनी अद्वितीय स्थिति को पूर्ववत् स्थिर रखने का सुअवसर रहा ; उस वक्त भी जबकि वह पाश्चात्य लोगों द्वारा शासित था। भारतवर्ष की महानता न तो उसकी भूमि की विस्तृतता है और न उसकी भौगोलिक स्थिति ही क्योंकि विश्व में ऐसे भी देश हैं जिनकी अति विस्तृत भूसीमायें हैं और जो अत्यधिक अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियां रखते हैं ; यह भी सुनिश्चित है कि न तो अधिक जनसंख्या के कारण अथवा न यहां के लोगों की कुशाग्र बुद्धि के कारण इसको अद्वितीय स्थान मिला हो क्योंकि ऐसे भी राष्ट्र हैं जहां की आबादी का घनत्व यहां से अधिक है और जहां के लोग, यदि अधिक नहीं तो, समकक्ष बौद्धिक क्षमता अवश्य रखते हैं।

तब भारत के गौरव तथा महानता के क्या कारण होने चाहिये ? भारत इसलिये महान् है कि उसको एक महान् संस्कृति विरासत के रूप में मिली है जो कि बहुमूल्य है तथा जो कभी न समाप्त होने वाली सम्पत्ति को, देश और देश निवासियों के लिये, निर्माण करती है। क्या यही महान् संस्कृति इसका कारण नहीं है कि इतने समय तक भारत पराधीन रहने के बाद भी स्वतंत्र राष्ट्र के रूप मे अपना अस्तित्व स्थिर रख सका है अन्यथा इसका नामोनिशान मिट गया होता।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक संस्कृति होती है परन्तु भारतीय संस्कृति अपनी एक विशेषता रखती है। जब

विश्व के अन्य राष्ट्र अपनी शक्ति भौतिक साधनों तथा मनुष्य-शक्ति के द्वारा आंकते हैं तो भारत नैतिक तथा आध्यात्मिक शब्दों के बारे में सोचता है। जब अन्य लोग अपनी पूर्वजता का अनुसरण कुछ अज्ञात बैरन (इंग्लैंड की एक उपाधि) और राजाओं के रूप में लेते हैं तो भारत तथा भारतवासी अपनी पूर्वजता में अपने ऋषियों तथा सन्तों का अनुकरण करते हैं; ऐसे ऋषि लोग जो सादगी, निस्पृहता और दूरदर्शिता के प्रतीक थे। पुनः जब अन्य देशों ने अपने पड़ोसी देश को आक्रमण शक्ति के द्वारा अपने अधीनस्थ करना चाहा और दबाना चाहा, भारत ने सदा अन्य राष्ट्रों से मैत्री स्थापित करने की कोशिश की। भारत की पूर्व परम्परा का एक प्रभावोत्पादक स्वरूप यह भी है कि जब सभी देशों ने अधिकाधिक भौतिक संपत्ति को एकत्र करने की कामना की वहां भारत-वासियों ने न्यूनातिन्यून भौतिक सम्पत्ति को एकत्र किया अर्थात् अपने जीवन की आवश्यकताओं को सीमित करने की सोची।

इसका क्या आधारभूत कारण है कि भारत इस असाधारण और विशिष्ट संस्कृति पर अपना एकाधिकार किये हुये है अर्थात् भारत की इस महान् संस्कृति की आधारशिला क्या है जब कि अन्य राष्ट्रों की संस्कृति इतनी महान् नहीं? इसके कारण को कहीं दूर नहीं खोजना पड़ेगा। इस संस्कृति का रहस्य इसकी शिक्षा में निहित है। यह शिक्षा विश्व की रोटी पैदा करने की शिक्षा नहीं है अपितु यह वह शिक्षा है जो कि सदुपदेशों का संग्रह बन कर पवित्र धर्मशास्त्रों में निहित है जैसे वेद

आदि पवित्र पुस्तकों में। वर्त्तमान युग की प्रचलित शिक्षा प्रणाली की तरह नहीं, प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली आज से भिन्न थी; जिसे गुरुकुल प्रणाली के नाम से पुकारा जाता था। इस गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अनुसार विद्यार्थी शिक्षक के सुपुर्द हो जाता जो उसको अपने परिवार में सम्मिलित कर लेता, उसके पश्चात् विद्यार्थी गुरु के कुटुम्ब का एक सदस्य बन जाता। दस वर्ष से लेकर पन्द्रह वर्ष के गहन अध्ययन तथा गुरु सेवा के पश्चात् विद्यार्थी गुरु को उचित परीक्षा तथा दक्षिणा देकर अपने घर को लौटता। इन दोनों शर्तों, परीक्षा एवं गुरु दक्षिणा, का अति आवश्यक प्रकाशन नहीं होता बल्कि यह गुरु दक्षिणा विद्यार्थी के माता पिता की क्षमता और स्वेच्छा से दी जाती थी। गुरुकुल छोड़ने के समय विद्यार्थी को विशेष सदुपदेश दिये जाते थे। ताकि जिनको वह अपने जीवन में चरितार्थ कर सके, अपने माता पिता बड़ों आदि और अतिथियों के प्रति प्रयुक्त कर सके और विवाह करने के पश्चात् गृहस्थ धर्म में प्रवेश होते ही वह किस प्रकार एक स्वस्थ पारिवारिक जीवन भी बना सके; जो परिवार बच्चों की संख्या में वृद्धि न करे अर्थात् परिवार नियोजन का सिद्धांत चरितार्थ करे और किस प्रकार वह अपने परिवार की स्थापना करे कि जिसके प्रति कर्त्तव्य पालन में वह सच्चे और सत्य धर्म के अनुसार आचरण करते हुये आय पैदा करे जिससे पारिवारिक जीवन सुगतापूर्वक चल सके।

इसके अतिरिक्त एक भिन्न प्रकार की गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का निर्देश एवं सकेत हमें तैत्तिरीय उपनिषद् की

शिक्षावली में मिलता है जिसका बहुत भली प्रकार चित्रण किया गया है। इस शिक्षा प्रणाली के कुछ विशिष्ट रूपों का चित्रण इस प्रकार है:—

१. विद्यार्थी को किसी एक को नित्य के लिये अपना गुरु निर्वाचित करना चाहिये जो श्रुतियों का पूर्ण ज्ञाता और ब्रह्मनिष्ठ हो (प्रथम अपने जीवन में ही व्यावहारिक हो)।

२. जैसे ही विद्यार्थी गुरु के समक्ष पहुँचेगा गुरु उसको विद्यार्थी के रूप में स्वीकार नहीं करेगा किंतु उस विद्यार्थी को कम से कम एक वर्ष की अवधि गुरु के साथ व्यतीत करनी पड़ेगी। इस अवधि में विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य, तप और गुरु की सेवा करनी होगी। इस परीक्षा काल में यदि विद्यार्थी सब प्रकार की सेवाओं के द्वारा गुरु को सन्तुष्ट कर लेता तो उसे विद्यार्थी के रूप में स्वीकार किया जाता।

३. प्रतिदिन जब गुरुदेव अपने अग्निहोत्र यज्ञ का सम्पादन करते तो वह अग्नि देवता से प्रार्थना करते कि "मुझे ऐसे शिष्य प्राप्त हों जो आत्मसंयमी, शुद्ध हृदय और आज्ञाकारी हों आदि, जो उच्च आत्मज्ञान को ग्रहण करने के योग्य हों।" दूसरे शब्दों में गुरु ऐसे विद्यार्थियों को ही शिष्य बनने की स्वीकृति देते जो धर्मशास्त्रों से प्रस्तावित शर्तों को पूरा कर सकें।

४. अध्ययन के पाठ्य विषयों में चारों वेद, वेदांग, शिक्षा कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्दशास्त्र, ज्योतिष, कुछ रूप में वीरत्व काव्य तथा पुराण भी सम्मिलित थे। अन्त

में विद्यार्थी को आत्मा की उच्च शिक्षा दी जाती थी। बिना आत्मज्ञान की शिक्षा के विद्यार्थी की शिक्षा अपूर्ण मानी जाती थी। महर्षि नारद और सत्यकेतु जब सनत्कुमार जी के सम्मुख पहुँचे और इसी प्रकार राजा प्रवाहन भी जिन्हें कि सनत्कुमार के सम्मुख इसीलिये लज्जित होना पड़ा था क्योंकि वे आत्मज्ञान से अज्ञ थे, यद्यपि दोनों समस्त श्रुतियों, स्मृतियों तथा पुराणों के पूर्ण ज्ञाता थे।

५. तैत्तिरीय उपनिषद् में यह भी प्रकट किया गया है कि आत्मज्ञान का रहस्य बुद्धि में निहित नहीं है और न तो धर्म शास्त्रों के श्रवण और अध्ययन में ही निहित है; किन्तु यह आत्मत्याग तथा वैराग्य में सन्निहित है। "त्यागेनैके अमृतत्वमानसुः।"

यह यही आत्मज्ञान था जिसने भारतीय प्राचीन संस्कृति की अभेद्य एवं सुदृढ़ आधारशिला का निर्माण किया जो समस्त प्राणियों की आत्मिक एकता की भावना द्वारा विद्यार्थियों को प्रभावित करती है और जो सादगी, शुद्धता, महान् प्रतिभा, निष्कपटता और विश्वबन्धुत्व के रूप में प्रकट होती है। जीवन में इसी प्रकार के दृष्टिकोण ने स्वभावतः शान्ति तथा सह अस्तित्व की ओर प्रेरित किया है।

वर्त्तमान शिक्षा और वर्त्तमान संस्कृति विशेषतया पाश्चात्य विस्तृत पैमाने पर असफल हुई है। इस पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति का विगत दो महायुद्धों में प्रचुरता के साथ प्रदर्शन हुआ। विश्व महायुद्ध विशेषरूप से द्वितीय महायुद्ध एक ही शताब्दी में, ३० वर्षों के अन्दर

लड़ा गया। वह सब आज की शिक्षा एवं संस्कृति का ही जीता जागता नमूना था

जबकि समस्त यूरोप तथा अमेरिका इस विनाशकारी युद्ध में इस विचार धारा के द्वारा उत्तेजित हो रहे थे कि किस प्रकार एक शक्तिगुट (मित्रदेश) दूसरे शक्तिगुट (परराष्ट्र) पर अपनी महानता स्थापित कर सकें, तो भारत अपनी स्वतन्त्रता के लिये सत्य की नैतिक शक्तियों और अहिंसा से लड़ रहा था। इन भयंकर विश्वयुद्धों में चाहे मित्रराष्ट्र विजयी रहे परन्तु यह उनकी वास्तविक विजय नहीं थी क्योंकि दोनों, विजयी तथा विजित, को एक ही प्रकार से हानि उठानी पड़ी थी ; अपार धन तथा जन की हानि शक्तिगुटों, मित्रराष्ट्रों तथा परराष्ट्रों को सहनी पड़ी। इन दोनों विश्वयुद्धों के दर्मियान भारत बराबर अपनी अहिंसा नीति को अपनाए रहा ; अपने शासकों को (अंग्रेजों) किसी प्रकार भी प्रतिरोध नहीं किया। आखिर को अंग्रेजों ने भारत भूमि को छोड़ दिया और भारतवर्ष को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी कि वे अपने देश का शासन स्वयं संभालें, वे इस भारत भूमि से चले गये।

भारतवासियों की आजादी की इस अहिंसात्मक लड़ाई की घटना ने पाश्चात्य शक्तियों की आंखें खोलदीं और उनको यह विचारने के लिये बाध्य किया कि मनुष्य अक्षय और अमर आत्मा को निर्दयों की दमनकारी शक्तियां दबा नहीं सकती। इसकी महात्मा गांधी ने घोषणा की थी जो कि सत्य तथा अहिंसा के महान् पुजारी एवं व्याख्याकार थे, जिनका वेष अर्द्धनग्न था तथा जो स्वतन्त्र भारत के पिता थे।

इतिहास ने इस घटना को अब स्वर्णाक्षरों में लिख लिया है कि भारत ने अपनी स्वतन्त्रता की प्राप्ति सभ्य एवं अहिंसात्मक साधनों से की किन्तु भारत इस स्वतन्त्रता को इतना शीघ्र आज तक भी प्राप्त न कर सकता यदि वह हिंसात्मक उपायों का उपयोग करता क्योंकि इसका कटु अनुभव भारत द्वितीय विश्वयुद्ध में कर चुका था जिसमें हिंसात्मक उपायों का प्रयोग करने से भयंकर अपार धन और जन की हानि उठानी पड़ी। पाश्चात्य शक्तियां अब भारत के सभ्य उपायों और संस्कृति में अधिकाधिक विश्वास करने लगी हैं। यह अब अत्यावश्यक हो गया है कि भारत अपनी प्राचीन संस्कृति को सुदृढ़ कर अपनी स्थिति को शक्तिशाली बनावे

यह बहुत उपयुक्त समय है। भारत ने इस लक्ष्य को समझ लिया है, विशेष रूप से उन लोगों ने समझ लिया है जिनको शासन तन्त्र चलाने का कार्य सौंपा गया है और जो इस बात को क्रियान्वित कर सकते हैं कि देश को उसी प्राचीन आधार शिला पर संस्थापित करें जो वेदों की शिक्षा पर आधारित है। विशेष रूप से शिक्षा के सम्बन्ध में स्वतन्त्र भारत की भावी सन्तति के आचरण पर पैतृक नियन्त्रण हो।

वास्तव में प्राचीन प्रणाली की तरह इस योजना और नीति को क्रियान्वित करने में कठिनाइयां पैदा हो सकती हैं किन्तु थोड़े साहस और आत्म-विश्वास से इस नीति की रूपरेखा बनाई जा सकती है। जो वर्त्तमान युग की अच्छाइयों को सीमित संख्या में ले सके। जब इस प्रकार की नीति अथवा योजना को प्रस्तावित करते समय हम

सचेत हैं कि यदि हम अपने को वाह्य जगत से विभक्त रखेंगे अर्थात् अपने में ही केन्द्रित रहेंगे तो इस प्रकार स्वसीमित मनोवृत्ति हमारी राष्ट्रीय प्रगति की क्षति एवं आत्महत्या कर देगी। हमें वाह्य जगत के उच्च विचारों से किसी भी प्रकार वंचित नहीं होना चाहिये।

शिक्षा के क्षेत्र में इस विचारधारा को दृष्टिकोण से पूर्ण करने के लिये यह प्रस्तावित करना चाहिये कि वर्त्तमान शिक्षा पद्धति में आध्यात्मिक विषयों को समस्त विद्यालयों और महाविद्यालयों में सम्मिलित कर लेना चाहिये। भविष्य के विद्यार्थियों के नैतिक आचरण को ऊँचा उठाने के लिये जो भविष्य में देश के भावी नागरिक बनेंगे चरित्र निर्माण के उपायों को निजी तथा सार्वजनिक रूप में प्रयोग में लाना चाहिये। इनके साथ ही उपाय और साधनों की योजना बनानी चाहिये कि अध्यापकों तथा माता पिता में संयुक्त नियंत्रण और उत्तरदायित्व की भावना विकसित हो जिससे कि वे विद्यार्थियों के चरित्र एवं आचरण को अच्छे सांचे में ढालने के लिये उन पर निरीक्षण रख सकें।

इस प्रकार शिक्षा में आदर्श चरित्र एवं आचरण का सम्मिश्रण ही भारत की भावी संस्कृति की सच्ची आधार-शिला है। भारत की ओर विश्व के समस्त राष्ट्र नेतृत्व की आकांक्षा से देख रहे हैं जिससे विश्व में शांति और समता की स्थापना हो सके। इस प्रकार के नेतृत्व को करने के लिये सर्वप्रथम प्रस्तावित सांस्कृतिक परंपरा से अपने घर को व्यवस्थित करना चाहिये। जब भारत एक बार अपनी स्थिति को सुरक्षित एवं सुदृढ़ कर ले तो वह धैर्य एवं आत्म-विश्वास से दूसरे अन्य राष्ट्रों का नेतृत्व कर सकता है।

सर्वशक्तिमान परमात्मा भौतिकवाद से मदान्ध जगत में अधिकाधिक प्रकाश प्रदान करे तथा अध्यात्मवाद की आंखें खोले जिससे सर्वत्र शांति, प्रसन्नता, सद्भावना की संस्थापना हो।

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
प्रकाशक का वक्तव्य	...	तीन
प्रस्तावना	...	चार
जगत की वर्त्तमान सांस्कृतिक प्रणाली में विद्यार्थियों का स्थान	.....	आठ
भारत की प्राचीन संस्कृति	.....	दस

प्रथम अध्याय

१. आध्यात्मिक जागरण की आवश्यकता	.....	३
२. सदाचार की आवश्यकता	.....	६
३. स्वास्थ्य के विषय में महत्वपूर्ण बातें	...	६
४. मदिरापान तथा मादक द्रव्य	.....	१२
५. जूआ तथा जूआरी	.....	१४
६. वेश्यागमन—महान् सामाजिक पाप	.....	१७
७. घूसखोरी	.....	२०
८. चोर बाजारी	...	२५
९. जूते में वस्तुयें छिपाना	.....	२३
१०. व्याज लेने की बुराई	.....	२४
११. बेईमानी	.....	२४
१२. विविध प्रकार का हाथ तेल	.....	२६
१३. मिलावट की बुराई	.....	२७

द्वितीय अध्याय

सामाजिक समस्यायें

१४. श्रम कल्याण के लिये नैतिक चेतना	...	३१

१५. समाजवादियों के लिये सन्देश ... ३३
१६. आत्म संयम तथा अति जनसंख्या की समस्या ३५
१७. सिनेमा की समस्या ४३
१८. आसुरी आन्दोलन ४३
१९. गौरक्षा ... ४५

तृतीय अध्याय

युवकों के लिये

२०. युवकों के कल्याणार्थ ४६
२१. भारत में शिक्षा सम्बन्धी सुधार ४८
२२. शिक्षा तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण ५१
२३. सांस्कृतिक शिक्षा की आवश्यकता ५३
२४. प्रिंसिपलों तथा प्रधानाध्यापकों से ५५
२५. विदेश में रहने वाले भारतीय विद्यार्थियों से ५७

चतुर्थ अध्याय

घरेलू तथा व्यावसायिक नीति

२६. घरेलू नीति ... ६२
२७. व्यावसायिक नीति ... ६६
२८. औषधीय नीति ... ६९
२९. कानूनी नीति ... ७३
३०. औद्योगिक नीति ७७
३१. अन्तर्राष्ट्रीय नीति ७९

पचंम अध्याय

साधुओं तथा संन्यासियों के लिये

३२. संन्यासी तथा समाज सेवा ८३

३३. संन्यासियों के लिये कर्त्तव्य ८५
३४. साधुओं एवं संन्यासियों के सम्मेलन ८७
३५. साधुओं तथा भिक्षुओं का ऐक्ट ८९
३६. साधुओं के क्लब ९२
३७. साधुओं का सुधार ९२
३८. साधुओं का संगठन ९४
३९. जाग्रत भारत में साधुओं का कर्त्तव्य ९६
४०. रिटायर्ड लोगों के लिये सन्देश ९९
४१. हर व्यक्ति के धर्म का सारांश १०१
४२. आध्यात्मिक केन्द्रों का संगठन ... १०१
४३. धर्म के विषय में मेरे विचार १११

परिशिष्ट

ध्यान का अभ्यास ११५

—•—

सांस्कृतिक पुनरुत्थान

प्रथम अध्याय

१. आध्यात्मिक जागरण की आवश्यकता

सारे राष्ट्रों के उदारचेता व्यक्तियों ने, सभी सन्तों, महात्माओं तथा दार्शनिकों ने सदा इस सत्य की घोषणा की है कि ईश्वर ही सबों का पिता है, सभी मानव भाई भाई हैं, शान्ति तथा सन्मति में ही कल्याण है तथा प्रेम एवं निष्कामता ही श्रेयस्कर है। अतः प्रेम तथा निष्कामता के सन्देश को हर हृदय में पहुँचाना ही अन्य सारे सन्देशों से बढ़कर महत् कार्य है।

इस युग में जब कि परमाणु बम, जातीय घृणा तथा राष्ट्रीय लोभ, संगठित लूट, राष्ट्रीय स्वार्थ, असहिष्णुता तथा अविश्वास का बोलबाला है; हमारा कार्य केवल राष्ट्रों की सरकार तथा राज्य प्रणाली के परिवर्त्तन मात्र से ही नहीं बन सकता; हमें तो सार्वजनिक आध्यात्मिक शिक्षण देने तथा व्यक्ति के स्वभाव में शुद्धता लाने एवं परिष्कृति लाने के लिये सार्वभौमिक आंदोलन करना होगा। हर व्यक्ति का सार्वभौमिक पैमाने पर नैतिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक सुधार होना चाहिये। इसकी आवश्यकता तथा इसकी उपादेयता को समझना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। क्योंकि जाति, राष्ट्र तथा मानव-समाज की मूलभूत इकाई व्यक्ति ही है।

अधिकांश मनुष्यों को अपनी पाशविक प्रवृत्तियों से बचना होगा। यह असंभव नहीं है। एक ही ईश्वर सबों में स्थित है। वह सभी व्यक्तियों का स्वरूप है। इस ईश्वरत्व को व्यक्त करना ही वास्तविक शिक्षा है। यदि हमें नवीन मानव-जाति का निर्माण करना है, जो 'सर्वभूत हिते रताः' के सिद्धांत को व्यवहार में उतारे, तो हमें शनैः शनैः समाज के स्वभाव में—विशेषकर गृह तथा शिक्षा सम्बन्धी क्षेत्रों में तथा साधारणतः सामाजिक क्षेत्रों में—आध्यात्मिक एवं नैतिक सुधार लाना होगा।

मैं जानता हूँ कि यह दुष्कर कार्य है परन्तु फिर भी कोई महान् कार्य जादू के समान घटित नहीं होता। सारे सृजनात्मक कार्यों के लिये कठिन पुरुषार्थ की आवश्यकता है। परिणाम की प्राप्ति शीघ्र नहीं हो सकता। अधिकतर ऐसे कर्मों का फल भावी सन्तति को ही प्राप्त होता है। परन्तु इस आंदोलन के द्वारा वृद्धजन भी अपने में परिवर्त्तन संघटित कर लेंगे। जिस प्रकार किसान वर्त्तमान फसल में परिवर्त्तन तथा सुधार नहीं लाता, हां उसको सड़ने तथा विनष्ट होने से बचाता है परन्तु वह उस क्षेत्र का उपचार करना आरम्भ कर देता है जहां कि उसकी भावी फसल बोनी है। उसी प्रकार वे लोग जो कि भावी शांति तथा सार्वभौमिक कल्याण के लिये कार्य कर रहे हैं उन्हें सर्व-प्रथम आदर्श परिस्थिति का निर्माण करना होगा जिसके द्वारा भावी सन्तति अपने आदर्शों को प्राप्त कर सकने में सफल तथा समर्थ बन सके। यदि इस जगत् में शांति लानी है, तो दंभ में कमी, संकीर्ण बुद्धि में कमी, भय-ग्रन्थि में कमी, पुरानी लकीर का फकीर बनने में कमी की

आवश्यकता है। हमें 'स्वयं जीना तथा दूसरों को जीने देना' के आदर्श तथा दूसरों के अधिकार तथा आवश्यकता को सर्वप्रथम समझ लेना होगा।

मनुष्य को असीम प्रेम का अर्जन करना चाहिये। अपनी जाति, अपने राष्ट्र, अपने धर्म के प्रति प्रेम के द्वारा विगठन, संघर्ष तथा बड़प्पन आदि के भाव को आश्रय नहीं मिलना चाहिये। अपने देश के प्रति प्रेम तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता जितनी प्रिय आपको है उतनी ही दूसरे देश वासियों को भी है। वास्तविक धर्म तो प्रेम ही है। वास्तविक धर्म सबों में एकता लाता है। ज्ञानी जन मनुष्यों को सबों में समता तथा शुभ देखने की शिक्षा देते हैं। हम सबको प्रयत्न करना चाहिये कि सब ईश्वर के दर्शन करें। क्योंकि तभी हम सबों में शुभ देख सकते हैं। मनुष्य को सत्य, शुद्धता, प्रेम, सन्तोष यथा निष्कामता की शिक्षा मिलनी चाहिये। ईश्वर में तथा मनुष्य हृदय में जीवन्त श्रद्धा होनी चाहिये। क्योंकि यही सच्चे धर्म का सारांश है। इसी श्रद्धा में हमारी विजय की आशा निहित है। इसको प्राप्त कर लेने पर हमारा कार्य करीब करीब पूरा हो जाता है। जिस मानव-जाति में ईश्वरीय ज्योति प्रदीप्त हो गई है वह स्वभावतः ही अपनी सारी शक्ति लगा कर उन सभी आदर्शों को प्राप्त कर लेगी।

यह जगत्, संग्राम तथा विनाश के भय से मुक्त बनें। धार्मिक असहिष्णुता के पागलपन, जातीय संकीर्णता तथा घृणा, गुलामी के द्वारा सभ्यता के प्रचार की भ्रांति, परोपकार तथा दानशीलता के मद तथा आसुरिकता,

पाशविकता और भौतिक वादिता से यह जगत् मुक्त बने। सबों को शांति मिले।

—:o:—

२. सदाचार की आवश्यकता

भारतवर्ष में आजकल सदाचार पर बल देना आवश्यक है। नैतिक विज्ञान का वह पहलू जो सच्चरित्रता, नैतिक जीवन, कर्त्तव्य पालन पर बल देता है उसे सदाचार कहते हैं। सदाचार सद्व्यवहार, सुशीलता आदि पर्याय-वाची शब्द हैं। नीति-शास्त्र में इसका वर्णन किया गया है कि बुद्धि प्रधान प्राणियों को दूसरों के साथ कैसा वर्त्ताव करना चाहिये—मनुष्य, मनुष्य के साथ कैसा व्यवहार करे। इस व्यवहार को ही सदाचार कहा जाता है।

जिस कर्म के द्वारा दूसरों को लाभ न हो, जिस कार्य के लिये मनुष्य को लज्जित होना पड़े उसे कदापि न करना चाहिये। वैसा कार्य करना चहिये जिसके द्वारा समाज की प्रशंसा प्राप्त हो। यही सदाचार का संक्षिप्त विवरण है। सत्य बोलना, अहिंसा का पालन करना, दूसरों की भावनाओं पर मनसा, वाचा, कर्मणा चोट न पहुँचाना, किसी व्यक्ति के प्रति कटु शब्द न बोलना, किसी व्यक्ति के प्रति जरा भी क्रोध न करना, दूसरों को गाली न देना, तथा दूसरों की निंदा न करना, सबों में ईश्वर को देखना—यही सदाचार है।

सदाचार के द्वारा ही मनुष्य को दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। सदाचार के द्वारा ही वह धन तथा सम्पत्ति को प्राप्त करता है। यह जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का

साधन है। सदाचार के बिना कोई भी व्यक्ति लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है। सदाचार के द्वारा धन, यश, दीर्घायु तथा सुख की प्राप्ति होती है। इससे अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। सदाचार से ही धर्म की उत्पत्ति होती है, धर्म के द्वारा मनुष्य दीर्घायु पाता है। सदाचार से यश, दीर्घायु तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिये सदाचार ही मुख्य साधन है।

अपने आचरण के अनुसार ही मनुष्य भला तथा धार्मिक बनता है। धार्मिक जनों के कर्म ही सदाचार के लक्षण हैं। सदाचार के द्वारा ही मनुष्य यश को प्राप्त करता है; इस लोक में तथा परलोक में भी। सदाचार के द्वारा तीनों लोकों पर विजय प्राप्त होती है। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसको कि सदाचारी प्राप्त नहीं कर सकता। सदाचारी व्यक्ति, मधुर भाषी व्यक्ति, की कोई भी बराबरी नहीं कर सकता है। लोग उसका आदर करते हैं। जो सदाचारी है तथा जो शुभ कर्म करता है उसकी ओर लोग बिना देखे ही आकृष्ट हो जाते हैं।

जिस व्यक्ति का व्यवहार अनुचित तथा दुष्टतापूर्ण है वह कदापि दीर्घायु को प्राप्त नहीं कर सकता। इस मनुष्य से सभी प्राणी भय खाते हैं तथा सभी उससे संतप्त रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी उन्नति तथा समृद्धि चाहता है तो उसको सदाचार का ही अवलंबन लेना चाहिये। सदाचार के द्वारा पापी जन भी सुखी तथा शुद्ध बन सकते हैं। सदाचारी व्यक्ति के साथ आदर्श तथा सिद्धांत रहते हैं। वह उनका पालन करता है। वह अपने दुर्गुणों को हटाता तथा सदाचरण के द्वारा सात्विक व्यक्ति बन

जाता है। वह अपने बड़ों, मातापिता, गुरुओं, आचार्यों, भाइयों, मित्रों, सम्बन्धियों, अनजान व्यक्तियों तथा अन्य प्राणियों के साथ व्यवहार करते हुये बहुत ही सावधान रहता है। साधुओं तथा महात्माओं के पास जाकर तथा सद्ग्रन्थों के द्वारा वह भला बुरा का विवेक सीखता है तथा उसी के अनुसार प्रसन्नता पूर्वक चलता है।

सदाचारी मनुष्य सदा सभी भूतों की शुभ कामना करता है। वह अपने बन्धुओं तथा सभी प्राणियों के साथ मिलकर रहता है वह कदापि भी दूसरों की भावनाओं को कुचलता नहीं है। वह कभी झूठ नहीं बोलता। वह ब्रह्मचर्य का पालन करता है। वह मन की कुवृत्तियों को रोकता है तथा सदाचार के अभ्यास के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने की तैयारी करता है।

"वैसा ही कीजिये जैसा कि आप दूसरों से अपेक्षा रखते हों" यही धर्म का सार है। इसका सावधानी के साथ पालन कीजिये। आप सभी कष्टों से मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। अपने दैनिक जीवन में इसका अभ्यास कीजिये।

धर्म, सत्य, सत्कर्म, शक्ति तथा सम्पत्ति—ये सभी आचरण के द्वारा उत्पन्न होते हैं। धर्म अत्यन्त ही सूक्ष्म, जटिल तथा गहन है। ज्ञानी लोग भी चक्कर में पड़ जाते हैं। धर्म से अन्ततः अर्थ, काम, एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। चार पुरुषार्थों में—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में धर्म ही सर्व प्रथम स्थान रखता है।

साधारणतः कर्त्तव्य अथवा सदाचार को ही धर्म कहते हैं। कोई भी कर्म जिससे कि श्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति हो,

उसे धर्म कहते हैं। वह सब जो दूसरों की हिंसा भावना से मुक्त हो, सदाचार ही है। नैतिक सिद्धांत का तात्पर्य यही है कि सभी जीव कष्ट से मुक्त हों, यही सदाचार है। धर्म सबों की रक्षा करता है। आत्मिक एकता के साक्षात्कार के लिये सदाचार ही नींव है। सर्वं खल्विदं ब्रह्म के साक्षात्कार के लिये सदाचार आपको तैयार करता है। सब कुछ ब्रह्म ही है। विविधता तो है ही नहीं।

—:o:—

३. स्वास्थ्य के विषय में महत्वपूर्ण बातें

यद्यपि हम सभ्य होने का गर्व करते हैं परन्तु फिर भी जहां तक भोजन करने का प्रश्न है हम भारी भूल कर बैठते हैं।

भोजन तथा नाश्ता के लिये अंग्रेजी प्रणाली हमारे देश की जलवायु के अनुकूल नहीं है।

पकवान तथा गरिष्ठ भोजन से आचार तथा मसालों के साथ, हम अपना पेट खूब भर लेते हैं। परन्तु इस अप्राकृतिक खाद्य के द्वारा इस बीसवीं शताब्दी के युवकों का शारीरिक गठन क्षीण हो चला है।

युग-युगांतरों की आदतों को हम अचानक नहीं छोड़ सकते। अतः हमको मध्यम मार्ग का अनुगामी होना चाहिये।

(१) हमें प्रातः भ्रमण अथवा कुछ उदर व्यायाम या सूर्यनमस्कार अथवा आसन—कम से कम पश्चिमोत्तासन तथा सर्वांगासन का अभ्यास कर लेना चाहिये।

(२) हमें उष्ण अथवा शीतल जल में प्रातः स्नान कर लेना चाहिये।

(३) हमें नाश्ता की आवश्यकता नहीं—स्नान के बाद एक प्याला दूध अथवा गर्म या ठण्डे जल में नींबू, नारंगी या टमाटर का रस निकाल कर पीना चाहिये। दूध के बदले मट्ठा भी पी सकते हैं। यदि कुछ भी प्राप्त न हो तो कम से कम एक प्याला गर्म अथवा ठण्डा पानी ही पी लीजिये।

(४) हमें प्रातः भोजन अवश्य करना चाहिये। भुना हुआ, मसालेदार तथा मिठाइयों का यथा संभव त्याग करना चाहिये।

(५) दोपहर के उपरांत चाय अथवा कॉफ़ी के बदले हम मौसम में उपलब्ध होने वाले एक या दो फल ले सकते हैं।

(६) शाम के भोजन में फल, सब्जी तथा दूध की अधिकता होनी चाहिये।

(७) सायं भोजन सात या आठ बजे से पहले कर लेना चाहिये।

(८) १० या ११ बजे के बीच हमको शयन करने के लिये चला जाना चाहिये।

(९) सप्ताह में एक बार हमको फल, दूध तथा सब्जी का ही भोजन करना चाहिये।

(१०) निराशापूर्ण विचारों को मन में न घुसने दीजिये। ईश्वर सदा हितैषी है। जीवन की कठिनाइयां हमारी उन्नति के लिये ही हैं। हमें ईश्वर से प्रार्थना

करनी चाहिये जिससे हम उन कठिनाइयों को दूर कर सकें। सोने से पहले अपने इष्टदेव को अपने मानस पटल पर लाइये। जीवन संग्राम में सफलता के साथ युद्ध करने के लिये स्वास्थ्य, सम्पत्ति तथा शक्ति की याचना कीजिये।

समय समय पर भोजन जितना आवश्यक है उतना ही उपवास भी। इसके द्वारा भूलों का सुधार हो जाता है। जब भी कभी कब्ज की शिकायत हो तो रेंडी का तेल, (केस्टर आयल) वनस्पति रेचक अथवा एनिमा के प्रयोग के द्वारा कब्ज को दूर करना चाहिये।

भोजन के निम्नांकित नियमों का यथासम्भव पालन कीजिये।

स्टार्च, स्नेहद्रव्य, हरी सब्जी तथा चीनी को एक साथ लेना चाहिये क्योंकि उनके पाचन के लिये क्षारीय अथवा उदासीन माध्यम की आवश्यकता होती है।

प्रोटीन, स्नेह द्रव्य, हरी सब्जी तथा अम्लीय फल भी एक साथ ही लेने चाहिये।

प्रातः फल खाना स्वर्णिम नियम है। केवल आप फल को ही खा सकते हैं। दोपहर में फल खाना रजत नियम है। केवल आप फल को ही खा सकते हैं। भोजन में स्वाद लाने के लिये कुछ नींबू का रस डाला जा सकता है। भोजन के उपरांत या भोजन के एक या दो घंटे बाद आप मीठा ले सकते हैं।

ये सारे नियम उन व्यक्तियों के लिये हैं जिनका पाचन ठीक नहीं है। ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत है। ऐसे लोग बहुत कम हैं जो कि अपने दृढ़ स्वास्थ्य के कारण

सब कुछ हजम करने की क्षमता रखते हैं तथा जो अनियमितता को सहन कर सकते हैं।

शारीरिक कमजोरी, स्नायु दुर्बलता तथा अस्वस्थता के कारण मनुष्य नैतिक पतन तथा अज्ञान को प्रशस्ति देता है। आंतरिक नैतिक तथा आध्यात्मिक बल के अर्जनार्थ स्वस्थ शरीर आवश्यक है।

—:०:—

४. मदिरापान तथा मादक द्रव्य

व्यावहारिक नैतिक जीवन के लिये भले बुरे का ज्ञान, विवेक बुद्धि तथा संकल्पशक्ति की आवश्यकता है। हर व्यक्ति का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह इन क्षमताओं को स्वस्थ बनाये रखे। जो व्यसन इन क्षमताओं को कमजोर बनाते हैं तथा इनको नष्ट करते हैं, वे नैतिक संस्कृति के लिये हानि कारक है। ये व्यसन इन क्षमताओ को दुर्लभ बनाकर इनको नष्ट कर डालते हैं। अतः ये संघातक हैं। वे व्यसन कितने ही स्वल्प क्यों न हों कालांतर में मनुष्य के लिये विध्वंसात्मक बन जाते हैं। जो इन व्यसनों में अनुरक्त होता है वह नैतिक नियम का खंडन करता है।

मदिरापान इन व्यसनों में सर्वप्रथम है। यह मनुष्य की नैतिक शक्तियों को विनष्ट कर डालता है, उसकी सारी महत्वकांक्षाओं तथा आध्यात्मिक कामनाओं को ध्वस्त कर डालता है। मनुष्य की प्रकृति स्थूल हो जाती है। वह पाशविक बन जाता है। यह व्यसन इतना फैल चुका है कि लोग इसको सामाजिक शिष्टता समझने लगे

हैं। आजकल व्हिस्की, शैम्पेन, ब्रान्डी, गिन तथा विविध प्रकार के मादक पेयों का व्यवहार दूध तथा फल की तरह प्रचलित हो गया है। हर सामाजिक सम्मेलन में मदिरा पान को आवश्यक स्थान दिया गया है। महिलायें भी इस अभिशाप से ग्रस्त हैं। कुछ आधुनिक परिवारों में माता, पिता, पुत्र तथा पुत्री एक ही टेबुल पर बैठकर मदिरापान करते हैं। शनैः शनैः यह आदत बढ़ जाती है। और वे अभ्यस्त शराबी बन जाते हैं। शराब के प्रभाव से सहस्रों अपराध तथा खून होते हैं। जहां शराबखोरी है वहां पर पापों का तो कहना ही क्या ? यह मानव जाति के नैतिक जीवन का भयंकर शत्रु है। सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक नेताओं के लिये यह महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है कि वे इस भूमि से इस दुर्व्यसन को पूर्णत दूर कर दें।

इसके समान ही भयंकर व्यसन हैं अफीम, भांग, चरस, तमाकू, गांजा आदि के मादक द्रव्यों का सेवन। यह बुराई उत्तर भारत में अधिक फैली हुई है। ये मनुष्य की विवेक शक्ति को नष्ट कर डालते हैं। इन मादक द्रव्यों के मृदुविष से सारी सूक्ष्म भावनाओं तथा प्रवृत्तियों का हनन होता है। यह मस्तिष्क को धुंधला बनाकर विचार की उदारता को नष्ट कर डालता है जिसके फल स्वरूप मनुष्य व्यर्थ कल्पनाओं तथा भ्रांतियों का शिकार हो जाता है। इसका व्यसनी सदा स्नायु दौर्बल्य से पीड़ित रहता है। जीवन की वास्तविकताओं का सामना करने में असमर्थ होकर कल्पना जगत में विचरण करने लगता है। ये मादक द्रव्य असाधारण रूप से उत्तेजक हैं तथा भ्रांति एवं नैतिक व्यभिचार को पैदा करते हैं। उस व्यसन का शिकार होकर अच्छे घर के लोग भी उजड़ जाते हैं।

धूम्रपान के द्वारा भी कुछ हद तक नैतिक पतन होता है। परन्तु इसका परिणाम दीर्घकाल में प्राप्त होता है। यह बहुत ही भयंकर है। मादक द्रव्यों का व्यसनी इतना निर्लज्ज हो जाता है कि वह पैरों पर पड़कर भी दूसरों से मादक द्रव्यों की याचना करने लगता है। वह अपनी स्त्री के आभूषण को बेचकर भी मादक द्रव्य को प्राप्त करता है। वह सारी सम्मान भावना को खो देता है।

इन बुराइयों का जब तक प्रसार है तब तक भारत की नैतिक उन्नति किस प्रकार हो सकती है? नैतिक जीवन तथा संस्कृति की उन्नति किस तरह से हो! इन शत्रुओं का सामना करने के लिये नैतिक सेना का गठन ही एकमेव आशा है। युवक तथा वृद्ध सभी जन इन बुराइयों से लड़ने के लिये एक समाज का निर्माण करें। जिसके द्वारा नैतिक उत्थान हो सके।

—:०:—

५. जूआ तथा जूआरी

जूआ आधुनिक समाज के लिये महान् अभिशाप है। इससे किसी को भी लाभ नहीं होता। फिर भी लोग जूआ खेलना बन्द नहीं करते। जूआ, शराब तथा स्त्री से भी अधिक मादक है। भ्रांत, मोहित, अज्ञानी, कामुक जीवों को फंसाने के लिये जूआ माया का सबसे बड़ा प्रलोभन है।

पुष्कर ने राजा नल को जूये के लिये ललकारा था। नल राजी हो गये थे। नल को सब कुछ हारना पड़ा। जितना भी अधिक वह हारता था उतना ही अधिक वह

विमोहित होता जाता था। एक वस्त्र के सिवा उसके पास कुछ भी न बचा। दमयन्ती को भी एक वस्त्र में नल का अनुगमन करना पड़ा। कितनी दयनीय अवस्था है यह। यही है जूये का परिणाम!

युधिष्ठिर ने भी दुर्योधन के साथ जूआ खेला था। परिणाम स्वरूप उन्हें राज्य हारना पड़ा था। उन्हें भी द्रौपदी के साथ वनों को जाना पड़ा था।

जूआ सदा झूठी आशा को बनाये रखता है। यह जूआरी को सदा प्रोत्साहित करता है। जूआ माया का अस्त्र है। जुआरी सदा यही सोचता है कि अगले दाव में वह जीत जायगा। परन्तु वह हारता ही जाता है।

जूआ मनुष्य के चरित्र को नष्ट कर डालता है। यह उसको अधर्मी तथा दुराचारी बना डालता है। इसके द्वारा मनुष्य अपनी विवेक बुद्धि को खो डालता है। वह शिष्टता को भी खो डालता है। जूआ मनुष्य को नास्तिक बना डालता है। इसके द्वारा मनुष्य कुसंगति को प्राप्त करता है। शराब पीना, वेश्यागमन करना, मांस भक्षण- ये जूये के नित्य सहचर हैं। जूआ-स्थल ही काल का मुख्य धाम है।

सारे जूआरी विनष्ट हो जाते हैं। वे भिखमंगे बन जाते हैं। उनकी बुद्धि मारी जाती है। मनुष्य ठग बन जाते हैं। जूआरी बेईमानी, संकीर्णता तथा धोखेबाज बन जाता है। वे कर्ज लेते हैं। परन्तु वे उसको लौटा नहीं सकते। भीख मांगना, चोरी करना तथा कर्ज लेना— ये ही उनके सिद्धांत बन जाते हैं। लोग उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वे सारे पापों का शिकार बन जाते हैं। उनकी अवस्था भी दयनीय हो जाती है।

जिस स्थान पर जूआ खेला जाता हो उस स्थान के निकट भी मत जाइये। एक क्षण के लिये भी जूआरी का संग न कीजिये। उसकी ओर देखिये तक नहीं। उससे बातें न कीजिये।

दीपावली के समय उत्तर भारत में लोग कई दिन तथा कई रात तक लगातार जूआ खेलते हैं। गरीब मनुष्य भी दीपावली के अवसर पर जूआ खेलने के लिये कुछ रुपये बचाये रखता है। सरकार इन पाप कर्मों पर लाइसेंस लगाती है। ठेकेदारों को इसके द्वारा बहुत लाभ होता है। दाव लगाने की आदत इतनी गहरी हो चुकी है कि छोटे छोटे लड़के तथा लड़कियां भी जूआरी बनी हुई हैं। जीवन के हर क्षेत्र में दाव लगाने का चलन है। व्यापारी भी दाव लगाते हैं।

इसको पूर्णतः बन्द करना चाहिये। जुआरियों को दण्डित करना चाहिये। उन्हें जेल में बन्द करना चाहिये। ठेकेदारों तथा इसके मालिकों को कड़ी सजा मिलनी चाहिये। यदि उनको यहां पर सजा न भी मिली तो ईश्वर उनको अवश्य दण्डित करेगा। वे दूसरे जन्म में असाध्य बीमारियों से पीड़ित होते हैं। वे भिखमंगों के कुल में जन्म लेते हैं।

घुड़दौड़, ताश खेलना, बाजी लगाना—ये सब भी जूये के ही प्रकार हैं। घुड़दौड़ के उपरांत अत्यधिक रुपया हारकर लोग उदास होकर वापस लौटते हैं फिर भी बाजी लगाना बन्द नहीं करते। इसके शिकार भग्न हृदय होकर, सब कुछ खोकर मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

—:०:—

६. वेश्यागमन—महान् सामाजिक पाप

मनुष्य जो कि स्वरूपतः ईश्वर है, अज्ञान वश अपने दिव्य स्वरूप को भूल अश्लील, गन्दे भोगों में चक्कर काट रहा है। अविद्या रहस्यमयी है। मोह रहस्यमय है।

वेश्यागम महान् सामाजिक बुराई है। सम्यक् बोध तथा शिक्षा के द्वारा इसको पूर्णतः बन्द कर देना चाहिये। यह समाज को नष्ट करता है तथा राष्ट्र की महानता को भी नष्ट करता है। दो विस्तृत रोगों—सुजाक तथा गोनोरिया का यही कारण है। ये रोग पुरुष तथा स्त्रियों के स्वास्थ्य को नष्ट कर उनको जीवन भर के लिये संतप्त बना डालते हैं।

जो मनुष्य स्वास्थ्य के नियमों की अवहेलना कर अश्लील जीवन व्यतीत करते हैं उनके लिये गोनोरिया तथा सुजाक ईश्वर प्रेषित अभिशाप हैं।

अपनी स्त्रियों के रहते हुए भी पुरुष वेश्यागमन करते हैं। कितनी लज्जा की बात है। उन लोगों ने अग्नि देवता को साक्षी कर यह प्रतिज्ञा की है कि वे अपनी स्त्रियों के प्रति सदा सच्चा बने रहेंगे। फिर भी वे अनैतिक जीवन व्यतीत करते हैं। इन मूर्ख व्यक्तियों को फांसी की सजा मिलनी चाहिये। ईश्वरीय कारण कार्य का नियम अचूक है तथा अमिट है। वे अपने कर्मों का फल अवश्य ही प्राप्त करेंगे।

गुप्त रोगों का शिकार बन मनुष्य मौन में ही कष्ट सहता रहता है। वह प्रारम्भ में ही लज्जावश डाक्टर से राय नहीं लेता और इस प्रकार से व्याधि उसके शरीर में गहरा प्रवेश कर जाती हैं। बहुत सी जटिलतायें उत्पन्न

हो जाती हैं तथा रुधिर विषाक्त हो जाता है। हड्डी तथा आंतरिक अवयव भी पीड़ित हो जाते हैं।

तब वे "६०६" तथा "६१४" के इन्जेक्सन लगवाते हैं। खून की जांच कराते रहने में उनको बहुत रुपया लगाना पड़ता है। सारे इन्जेक्सन तथा उपचार व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं।

आत्मसंयम के अभाव के कारण वे अपने रोग को अपनी निर्दोष स्त्रियों तक भी पहुँचा देते हैं। वे भी मौन में ही उस कष्ट को सहन करती रहती हैं (तथा गर्भपात आदि बीमारियों से पीड़ित होती हैं)। उनके बच्चे भी इस रोग को लेकर ही जन्म लेते हैं।

हे मूर्ख मनुष्य! क्या अब भी आपको अपनी मूर्खता का ज्ञान हुआ? क्या अब भी आप प्रतिज्ञा करेंगे कि आप सदाचारमय जीवन व्यतीत करेंगे? हे युवक! क्या अब भी तुमको अनैतिक जीवन के परिणाम का ज्ञान हुआ? क्या अब यह प्रतिज्ञा करेंगे कि "अब मैं शुद्ध जीवन व्यतीत करूंगा तथा एक पत्नीव्रत का पालन करूंगा।"

हे कालेज छात्रों! आप अपने पिता की सम्पत्ति को रेस्तरां, होटल, सिनेमा आदि में व्यर्थ ही व्यय करते हैं। सावधान! गोनोरिया तथा सिफलिस के शिकार न बनिये। आपका जीवन नष्ट हो जायगा।

साधुओं तथा संन्यासियों से आप आत्म संयम को सीख लीजिये। जप, कीर्त्तन, ध्यान तथा सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय में सदा नियमित बनिये। आप विश्व के भावी नागरिक हैं। आप भारत की आशा हैं। शुद्ध बनिये।

सदाचारी बनिये। धार्मिक बनिये। आप पूर्णता तथा ईश्वरीय महिमा की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेंगे। सांसगत सुखों में इस जीवन को न बिगाड़िये। ऊपर उठिये। आध्यात्मिक ऊंचाइयों की ओर उठिये।

उन्नत विचार तथा ईश्वरीय ध्यान के द्वारा अपनी स्नायुओं के उत्तेजन को शांत कीजिये। सभी स्त्रियों में माता दुर्गा के दर्शन कीजिये। अपने दृष्टिकोण को ही बदल डालिये। भीष्म, लक्ष्मण, हनुमान से प्रेरणा को प्राप्त कीजिये। ऐसे कर्म कीजिये जिसके द्वारा आपका जीवन उन्नत तथा गौरवपूर्ण एवं महान बने।

वेश्यागमन का एक बार शिकार बन जाने पर मनुष्य पशु बन जाता है। वह आसुरिक हो जाता है। वह अपनी नैतिक चेतना को पूर्णतः खो देता है। वह निर्लज्ज हो जाता है। वह किसी भी पाप को छोड़ता नहीं। वह शराब पीना, जूआ खेलना, चोरी तथा खून तक भी करने लग जाता है। उसका समाज में कोई प्रतिष्ठित पद नहीं रह जाता। अतः कदापि भी इसके निकट न जाइये। सदा सावधान रहिये। इस भयंकर अग्नि से अपनी रक्षा कीजिये।

वेश्यागमन को स्वीकृत, लाइसेन्सयुक्त व्यवसाय बना कर उसको प्रोत्साहन दिया जाता है। इस बुराई का दमन करने की अपेक्षा लोगों ने इसे अनिवार्य तथा आवश्यक मान लिया है। धर्म ही मनुष्य को शक्ति तथा साहस दे सकता है। उसके द्वारा ही मनुष्य इन गहरी गड़ी हुई बुराइयों को दूर कर सकता है।

क्लैडिस्टन वेश्यागमन एक दूसरी बुराई है। कुछ होटल तथा दुकानें वास्तव में वेश्यास्थल ही रहे हैं। वहां वेश्यागमन होता रहता है। वे महान् पाप के केन्द्र हैं। क्या जीविकोपार्जन के लिये अन्य कोई शिष्ट तथा सभ्य साधन नहीं है? आप इस पाशवी, अशिष्ट, हेय साधन को क्यों अपनाते हैं? शीघ्र ही इसको बन्द कीजिये। सच्चा मनुष्य बनिये। आत्महंता न बनिये। इस अपमान जनक जीवन को त्यागिये। आप अब बच्चे नहीं हैं। आप समझदार मनुष्य हैं। आप अपने पैरों पर चल रहे हैं।

हे पतित बहनों! अपने शरीर को न बेचो। ऊपर उठो। सीता, दमयन्ती, अनुसूया, मीरा के पदचिन्हों पर चलो। आप सभी माता दुर्गा की सन्तान हैं। अपने वास्तविक स्वरूप को जानो। सदाचार पूर्ण जीवन बिताओ। देवी बन जाओ।

यह जगत हर प्रकार के वेश्यागमन से मुक्त बने। आप सभी शुद्धता तथा सदाचार का जीवन बितावें तथा इस प्रकार मुक्ति, पूर्णता एवं समता को प्राप्त करें।

—:०:—

७. घूसखोरी

घूस लेने की आदत बहुत ही बुरी प्रचलित है। यदि आप कार्यालय में काम करने वाले किसी व्यक्ति से पूछें "जयदेव! आपका वेतन कितना है?" वह कहेगा "मेरा वेतन तो ५०) रु० है परन्तु मेरी आय ७५) रु० है।" यह आय घूस के सिवा अन्य कुछ भी नहीं। लोग अज्ञानी हैं। तथाकथित विद्वान् लोग भी कार्य तथा कारण के

नियम से अनभिज्ञ हैं। वे संस्कारों तथा उनकी शक्तियों से अवगत नहीं। यदि आप घूस लेते हैं तो आपको इस दुष्कर्म के लिये दण्ड मिलेगा। साथ ही साथ घूस लेने के संस्कारों के कारण आप दूसरे जन्म में भी घूस लेने की ही कामना रखेंगे। आपके विचार तथा कर्म आपके चित्त में अंकित हैं। आप अपनी बेईमानी को दूसरे जन्म में भी ले जाते हैं। इस प्रकार आप भयंकर क्षति उठाते हैं। अपनी आवश्यकताओं को कम करो। अपने वेतन के अनुसार ही अपने जीवन को व्यतीत करो। आपका अन्तःकरण शुद्ध रहेगा। आप चिंता तथा शोक से सदा मुक्त रहेंगे। आपकी मृत्यु भी शांति के साथ होगी। आप शायद अब कर्म के नियम को समझ गये होंगे। ईमानदार बनिये। इसी क्षण से सच्चा बन जाइये। उन कार्यालयों में कदापि भी काम न कीजिये जिनमें घूस लेने का प्रलोभन हो। आप कलुषित हो जायेंगे। शिक्षा दान देने का मार्ग है। यह सर्वोत्तम दान देने का मार्ग है। इसमें पाप करने के लिये अधिक अवसर नहीं है। आप शांतिपूर्ण जीवन बिता सकते हैं। धार्मिक तथा दार्शनिक साहित्य के अध्ययन के लिये तथा साधना के लिये आपको अवकाश मिलेगा। आप शीघ्र ही आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त कर सकते हैं।

—:०:—

८. चोर बाजारी

जहां तमस् अथवा अन्धकार है
वहीं चोर बाजारी है।
जहां अविद्या अथवा अज्ञान है

वहीं चोर बाजारी है।
जहां मिथ्या व्यापार है
वहीं चोर बाजारी है।
पत्नी अथवा पति अविश्वसनीय बन जाते हैं।
शिष्य गुरु की निन्दा करता है।
बड़ा आफिसर अपने अधीनस्थ व्यक्तियों से घूस लेता है।

यही चोर बाजारी है।
जहां भी लोभ तथा स्वार्थ है,
वहीं चोर बाजारी है।
ज्ञान सूर्य वहां विभासित नहीं होता,
एकता तथा विश्वप्रेम का पलायन हो जाता है,
सत्यं तथा शुभम् का वहां निवास नहीं,
शांति का वहां पर साम्राज्य नहीं।
चोर बाजारी के व्यवसायियों में तेजस् नहीं,
वे आत्महन्ता हैं।
उनके चहरे कलंकित हैं।
वे इस पृथ्वी पर भार हैं।
उनका धन शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।
क्योंकि भाइयों का गला काटकर उन्होंने यह सम्पत्ति जुटाई है।

वे सीधे अन्धतम् नरक को प्राप्त करेंगे। अतः हे नर! चोर बाजारी का त्याग करो। सत्यवादी बनो तथा परम आनन्द को प्राप्त करो।

—:o:—

६. जूते में वस्तुयें छिपाना

ठग अपने विशेष प्रकार के जूतों में अफीम आदि छुपाता है।

वह शिष्ट मनुष्य की भांति चलता है।

परन्तु कुशल सरकारी अधिकारी किसी तरह उसे पहचान ही लेते हैं।

उसको दण्ड मिलता है।

एक यूरोपियन महिला अपने बच्चे की गुड़िया में बहुत से हीरों को चुरा कर भाग गई।

यह भी एक प्रकार की चोरी ही है।

कुछ लोग किताब के भीतर भी छेद बना देते हैं।

उनके अन्दर अफीम छिपाकर पन्ने चिपका देते हैं।

वे भी किताबें हाथ में रखकर शिष्ट जनों की तरह चलते हैं।

ऐसे लोगों का भी पता चल जाता है।

तथा वे दण्डित होते हैं।

खानोंमें काम करने वाले हीरा अथवा सोना निगल लेते हैं।

एक्सरे के द्वारा इसका पता लग जाता है,

उन्हें विरेचक दिया जाता है।

हे नर! क्यों इस तरह से स्वयं को पतित बनाते हो?

आप तीनों लोकों के स्वामी हो। इन दुष्कर्मों का त्याग करो।

ईश्वर पर ध्यान के द्वारा अक्षय धन को प्राप्त करो।

—:०:—

१०. ब्याज लेने की बुराई

ब्याज लेना अमानुषिक है। अब इसका समय आ गया है कि इस बुराई को समाज से उठा दिया जाय। यदि कोई व्यक्ति उधार दिये हुए धन पर सूद मांगता है तो यह अपराध माना जाना चाहिये।

रुपये उधार देने से निर्धन जनों को समय पर सहायता अवश्य मिलती है। परन्तु सूद लेना तो महान् अपराध है। इसके लिये आजीवन कारावास की सजा मिलनी चाहिये।

जो आलसी लोग गरीब लोगों का खून चूसते हैं, उन्हें समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिये। जो अधिक सूद लेते हैं उनको अपने इस कर्म के लिये कठोर दण्ड प्राप्त होगा। "सूद लेना" कठोर कर्म है। पैगम्बर मुहम्मद साहब का कहना है कि उधार दिये हुये तथा बैंक में रखे हुये धन पर सूद लेना पाप है। इस व्यवसायी जगत में भी सच्चे मुसलमान बैंक से सूद नहीं लेते। कितना शिष्ट कार्य है यह।

—:०:—

११. बेईमानी

बेईमानी एक दुर्गुण है। प्रायः सभी व्यक्तियों में किसी न किसी प्रकार की बेईमानी रहती ही है। बेईमानी लोभ की दासी है। जहां भी बेईमानी है, वहां पर कुटिलता, ठगी, धोखेबाजी आदि का बोलबाला हो जाता है। ये बेईमानी के सैनिक हैं।

लोभ काम का प्रमुख अधिकारी है। काम की तृप्ति के लिये सारे प्रकार के कुकर्म किये जाते हैं। यदि काम तथा लोभ को निर्मूल कर दिया जाय तो मनुष्य सच्चा तथा नेक बन जाता है।

बेईमान व्यक्ति किसी भी व्यवसाय अथवा व्यापार में उन्नति नहीं कर सकता। शीघ्र ही कुछ दिनों में उसकी बेईमानी पहचान ली जाती है। समाज के सभी लोग उससे घृणा करेंगे। वह अपने सारे कार्यों में भी विफल होगा। वह घूस लेने तथा झूठ बोलने में जरा भी न हिचकेगा। एक असत्य को छिपाने के लिये उसको दस झूट बोलने पड़ेंगे। इन दस झूटों को पक्का बनाने के लिये उसको पचास और झूठ बोलने होंगे। वह बल पूर्वक सत्य को भी नहीं कह सकता उसका अन्तःकरण सड़ा हुआ है। बेईमानी को दूर कर ईमानदार बनिये। अपने भाग्य से ही सन्तुष्ट रहिये। अधिक तृष्णा न कीजिये। सरल जीवन बिताइये। आपके विचार उन्नत होने चाहिये। ईश्वर से भय कीजिये। सत्य बोलिये। सबों से प्रेम कीजिये। सबों में अपनी आत्मा का ही दर्शन कीजिये। तब आप कभी भी दूसरों के साथ व्यवहार में बेईमानी नहीं कर सकेंगे। आप अपने अल्प धन का भी त्याग करने के लिये तैयार रहेंगे। आप विस्तृत हृदय तथा उदार स्वभाव को प्राप्त कर लेंगे। यदि आप जीवन में सफलता तथा साक्षात्कार प्राप्त करना चाहते हैं तो इसकी ही आवश्यकता है।

—:०:—

१२. विविध प्रकार का हाथ तेल

कुछ लोगों को क्रिसमस उपहार मिलता है।

कुछ लोगों को आम, वस्त्र, दाल तथा चावल आदि प्राप्त होता है।

कुछ ५ प्रतिशत तथा १० प्रतिशत प्राप्त करते हैं।

कुछ आधा-आधा पचास-पचास प्राप्त करते हैं।

कभी-कभी मेमे साहब को पिछले दरवाजे से चेक अथवा कुछ सिक्के मिल जाते हैं।

कुछ लोगों की जेब में बड़ा लिफाफा डाल दिया जाता है।

कुछ लोग मोटर तथा कार का उपहार प्राप्त करते हैं।

यह भी एक प्रकार हाथ तैल ही है।

बुद्धिमान लोग अपनी बुद्धिमानी के द्वारा ही काम लेते हैं।

जितनी संस्कृति महान् होती है उतनी ही चालें भी चली जाती हैं।

जितनी ही बुद्धि बढ़ती है उतनी ही सूक्ष्म चाल चली जाती है।

तब काम तुरन्त हो जाता है।

तब हस्तान्तर तथा स्वीकृति शीघ्र ही मिल जाती है।

ये सारे लोग अपनी आत्मा तथा अन्तःकरण का हनन करते हैं।

वे ऐसा जन्म तथा जन्मान्तर तक करते रहेंगे।

वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं?

कितना भयंकर मोह है यह।

उन्हें रौरव नरक में सुगमतया प्रवेश मिल जाता है।
बहुत से लोग हाथ-तेल के द्वारा धनी बन गये हैं।
परंतु उनका सारा धन डाक्टरों के पास चला जाता है।
कुछ अपने धन का अपव्यय कर डालते हैं।
हाथ में कुष्ठ रोग हो जाता है।
हे अज्ञानी नर! इस अज्ञान को बन्द कर।
अपनी ही सम्पत्ति से सन्तुष्ट रहो।
सदाचारी जीवन बिताओ।

बेदनायगम ने कुछ पान की पत्ती ग्रहण करने के कारण अपनी स्त्री को जेल की सजा दे दी थी।

कितने उदार हृदय के व्यक्ति थे वह।
उनके समान ही शुद्ध बनो।
आत्मा तथा अन्तःकरण का हनन न करो।
आध्यात्मिक धन ही अक्षय धन है।
शुद्ध बनो तथा इसी जन्म में साक्षात्कार प्राप्त करो।

—:०:—

१३. मिलावट की बुराई

आज हमारे देश में सबसे बड़ी विपत्ति है भोजन तथा औषधि में मिलावट। भोजन तथा औषधि में मिलावट की प्रथा भयानक बीमारी के समान है। जो कि सूक्ष्म रूप से अनेकानेक बीमारियों को तथा क्लेश को जन्म देती है। जो लोग इस प्रकार का कार्य करते हैं यह उनके अन्तःकरण के लिये बहुत ही हानिकारक है। यह राष्ट्र के स्वास्थ्य तथा जीवन के प्रति भी भयंकर तथा हानिकारक है। इसको भारत जैसे आध्यात्मिक देश से दूर करने के

लिये सरकार की सावधानी तो चाहिये ही साथ ही साथ जनता का सहयोग भी आवश्यक है। खाद्य पदार्थ तथा औषधि में मिलावट सबसे बड़ा अपराध है। यह नीति के स्तर का पतन तथा राष्ट्रीय चरित्र में निम्नता का परिचायक है।

जनता तथा सरकार को मिलावट के प्रकारों का ज्ञान होना चाहिये। यह विस्मयकारक सत्य है कि शूकर-चर्बी, गौमांस चर्बी के मिलावट के द्वारा घी बनाये जाते हैं। कभी-कभी काम में न लाये जाने वाले मोबिल आयल को भी घी में मिला दिया जाता है तथा उसको अच्छे टीनों में बन्द करके बाजारों में बेचा जाता है। पार्वतीय भागों के पहाड़ी लोग मक्खन के साथ में डालडा मिलाने की अच्छी कला जानते हैं। शुद्ध मक्खन तथा मिलावटपूर्ण मक्खन में जरा भी भेद नहीं मालूम देता। विक्रेता इसको ग्राहकों के सामने गलाकर बेचते हैं। चाय भी विविध प्रकार की व्यर्थ पत्तियों तथा कलियों को रंग कर बनाते उन्हें सुन्दर डिब्बों तथा बक्सों में बन्द कर उन पर मनोहर लेबिल लगाकर खपत के लिये भेज देते हैं। उन पत्तों को वे चाय के इत्र से सुवासित कर डालते हैं। चावल मे भी सस्ती वनस्पतियों को सुखाकर तथा रंग कर मिला देते हैं। आटा में भी महीन चूर्ण, तथा सड़े घुने मकई तथा जुआर के आटे को मिला कर बेचते हैं। दाल में भी मिलावट की जाती है।

सभी प्रकार के मसालों मे छोटे-छोटे डन्टलो को काट कर तथा उनको रंग कर मिला दिया जाता है। मिलावट की कोई हद नहीं। सबसे भयंकर मिलावट भी अमिश्रित शुद्ध

वस्तु प्रतीत होती है। लोगों के बहुमूल्य जीवन के लिये मिलावट से बढ़कर अन्य कोई भी खतरनाक वस्तु नहीं है।

औषधियों में भी मिलावट होती है। बिना किसी काम के पाउडर को कैप्स्यूल में भर कर औषधियों के रूप में उसको बेच दिया जाता है। इससे देश का बहुत विनाश होता है। अधिकांश औषधियों को वे तनु बना देते हैं। किसी भी पदार्थ को खरीदने में हम जितनी सावधानी रखें उतना ही अच्छा है। सम्पत्ति की मिथ्या धारणाओं के धोखे में आकर लोग बहुत सूक्ष्म अपराध कर डालते हैं। बेईमानी तथा ठगी के द्वारा मनुष्य कैंसर, यक्ष्मा, टी० बी०, पेट में घाव, फिस्चुला, बहरापन, गूंगापन, अन्धापन, हृदय तथा पैर में जलन तथा दूसरे जन्म में भी अंगों की विकृति आदि को भोगता है। क्रिया तथा प्रतिक्रिया बराबर तथा विपरीत होती है।

जनता तथा सरकार को शीघ्र इस मिलावट को दूर करने की ओर ध्यान देना चाहिये। भोजन, दूध, घी, तेल तथा औषधि में मिलावट को यथा शीघ्र दूर कर देना चाहिये। इस देश में यह अपराध बहुत ही भयंकर हो चला है। इस पर और विस्तार से लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। मिलावट का कार्य वैयक्तिक पाप, सामाजिक अपराध तथा राष्ट्रीय खतरा है— जो लोग इस कार्य में सम्मिलित हैं उन्हें इसका बुरा फल भोगना होगा। जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता है। सारे अपराधों में मिलावट का अपराध निकृष्ट है। इसके द्वारा सार्वजनिक स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। इससे भयंकर व्याधियां पैदा होती, लोगों का खून विषाक्त

होता तथा इस प्रकार बहुमूल्य मानव-जीवन को क्षति पहुँचती है। लोगों को इस बात की शिक्षा देनी चाहिये कि भौतिक सम्पत्ति की चमक दमक के पीछे अन्धाधुन्ध दौड़ने से कोई लाभ नहीं वरन भयंकर हानि है। इस कार्य के लिये आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार अत्यन्त आवश्यक है। इसके द्वारा ही भारतवर्ष के नैतिक जीवन को ऊँचा उठाया जा सकता है।

———

द्वितीय अध्याय

सामाजिक समस्यायें

१४. श्रम कल्याण के लिये नैतिक चेतना

श्रमिकों को हड़ताल करने के लिये बाध्य नहीं करना चाहिये। व्यवसायियों का यह कर्त्तव्य है कि वे उनके कल्याण के लिये कार्य करें। साधारणतः व्यावसायिक जन यंत्रबुद्धि को रखते हैं। वे अपने श्रमिकों के दल को स्वतः कार्य करने वाला यन्त्र समझ लेते हैं। उनके हृदयों में श्रमिकों के लिये तनिक भी सहानुभूति नहीं है। यह बुरा है। उनके कल्याण पर ध्यान देना उनके मालिकों का नैतिक कर्त्तव्य है। क्योंकि उन श्रमिकों के श्रम के आधार पर ही उनकी सम्पति टिकी हुई है। उन्हें उन श्रमिकों को उचित वेतन देना चाहिये, सुविधायें प्रदान करनी चाहिये ताकि उन्हें हड़ताल करने के लिये बाध्य न होना पड़े। श्रम का निर्मम दुरुपयोग नैतिक नियम के विरुद्ध है।

छोटी-छोटी बातें ही बहुत महत्व रखती हैं। यह मिल मालिकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने श्रमिकों को उनके नेत्र की रक्षा के लिये चश्मे प्रदान करें जिससे मिलों तथा

फैक्टरियों में काम करते हुए वे बाहरी पदार्थों से अपने नेत्रों की रक्षा कर सकें। यदि अकस्मात ही नेत्रों को कुछ खतरा हुआ तो तुरन्त नेत्र सर्जन द्वारा उनके उपचार का प्रबन्ध करना चाहिये। अन्यथा दूसरी आंख भी खराब हो सकती है।

—:o:—

१५. समाजवादियों के लिये सन्देश

समाजवादियों का उद्देश्य प्रशंसनीय है। वे पूंजिपतियों तथा जमीन्दारों को कुचल कर धन तथा वस्तुओं के समान वितरण के द्वारा लोगों को सुखी बनाना चाहते हैं। वे गरीबों के दुख को दूर करना चाहते हैं। कुछ कार्यकर्त्ता बहुत ही सच्चे हैं। उन लोगों ने इस प्रकार के कार्यों के लिये अपना जीवन अर्पित कर दिया है। कुछ लोगों ने इसमें भाग लिया है केवल जनता में अपनी धाक जमाने के लिये। उनके भीतर उचित भाव नहीं है। न तो उनमें सम्यक संकल्प है और न ठीक प्रवृत्ति ही।

समाजवादी कहते हैं—"हम पूंजीपति, राजा तथा महाराजाओं को नहीं चाहते। राज्य सभी बच्चों की देखरेख करेगा। एक ही रसोई गृह से सबों को भोजन दिया जायगा। हम सिनेमा के लिये टिकट देंगे। हम सभी लोगों की रक्षा करेंगे। सभी अपनी क्षमता, योग्यता तथा शक्ति के अनुसार कार्य करेंगे। लोगों को अध्ययन मनोरंजन, खेलकूद के लिये पर्याप्त समय मिलेगा। वे बहुत सुखी होंगे। वे चिंता तथा दुखों से सदा के लिये मुक्त रहेंगे। उन्हें पर्याप्त भोजन दिया जायगा।"

यह दर्शन अच्छा है। परन्तु यह विरोचन का दर्शन है। यह भौतिक दर्शन ही है। उनका लक्ष्य है आरामदेह जीवन। परन्तु आरामदेह जीवन शांति तथा ज्ञान का शत्रु है। केवल ब्रेड तथा जेम ही मनुष्य को अमर नहीं बना डालते, यह मुक्ति प्रदान नहीं कर सकता। इसके द्वारा नित्य आनन्द तथा ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

समाज का आधार, समस्त जगत, शरीर, मन तथा इन्द्रियों का आधार ब्रह्म अथवा आत्मा है। वह अमर वस्तु है। वह "वाद" जो इस मूल तत्व का निषेध करता है, जिसका लक्ष्य आत्म साक्षात्कार नहीं है, वह शीघ्र ही बुलबुले की भांति नष्ट हो जायगा।

जगत को नचिकेता जैसे ज्ञानी तथा धीर व्यक्तियों की आवश्यकता है। जिसने राज्य, स्वर्गिक अप्सरायें, दीर्घायु, ऐश्वर्य, विमान आदि को ठुकरा कर केवल नित्य सत्य की ही कामना की थी—जो सत्य, कारणकार्य, भला, बुरा से परे है। इस जगत को मैत्रेयी जैसी स्त्रियों की आवश्यकता है जिसने अपने आप याज्ञवल्क्य से कहा था—"क्या इस समस्त संसार का धन मुझे अमृतत्व दे सकता है? मैं तो समस्त संसार के धन को भी नहीं चाहती।"

समाजवादी लोग जिनकी निम्न प्रकृति शुद्ध नहीं हुई है, जिनमें स्वार्थपूर्ण राजसिक कठोरता है, जिनमें आत्म-स्तुति का भयानक दुर्गुण है, जो मिथ्यावादी हैं तथा जो पाखण्डी हैं, वे इस समाज की कोई भलाई नहीं कर सकते।

निष्काम्य सेवकों में कर्मयोग, भक्तियोग, तथा वेदांत का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। उन्हें यम, नियम, आसन,

अहिंसा, सत्यम्, ब्रह्मचर्य, यथाव्यवस्था का गुण, सेवा, करुणा, विश्वप्रेम, आत्मसंयम, सरल जीवन, सहनशीलता, क्षमा आदि का अभ्यास करना चाहिये। इन सारे गुणों के द्वारा सम्पन्न होकर ही उनको सेवा के क्षेत्र में उतरना चाहिये। तभी वे कुछ लाभकर कार्य करेंगे।

समाजवादी सभी सामाजिक बुराइयों को दूर नहीं कर सकते। इसके द्वारा मनुष्य को पूर्ण शांति तथा आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। वही दर्शन जो कि मन तथा इन्द्रियों के दमन में सहायक हो तथा जो मनुष्यों के अज्ञान को दूर करता हो मनुष्य को पूर्ण सुख शांति, आनन्द तथा अमृतत्व की ओर ले जा सकता है।

समाजवादी यह चाहते हैं कि सारा जगत समाजवादियों से भर जाय। वे इसके लिये कटिबद्ध होकर कार्य कर रहे हैं। भौतिकवादी यह चाहते हैं कि सारा जगत ही भौतिकवादी हो जाय। क्या यह संभव है? नहीं, कदापि नहीं। यह सब कल्पना मात्र है। इन सारे आंदोलनों के पीछे ईश्वर का हाथ है। वह आंदोलन जिसको कि ईश्वर की स्वीकृति प्राप्त है तथा जो धर्म पर आधारित है, जो मानव जाति को अधिकतम नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति प्रदान कर सकता है, वही आन्दोलन दीर्घकाल तक उन्नतिशील रहेगा, अन्य सारे आंदोलन जो कि अहंकार पर आधारित हैं कुछ ही दिनों में नष्ट हो जायेंगे। इस बात को सदा अच्छी तरह याद रखिये तथा अच्छी तरह से समझ लीजिये।

—:०:—

१६. आत्मसंयम तथा अति जनसंख्या की समस्या

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में आत्मसंयम तथा इन्द्रियों के आवेग का दमन भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र रहा है। भारतीय नैतिक आधार की दृढ़ता के कारण ही भारतीय संस्कृति अनेकानेक विदेशी आक्रमणों के बाद भी बनी रही। यौन प्रवृत्ति के दमन से अन्य सारे आवेगों का दमन हो जाता है।

इस देश की आबादी में त्वरित वृद्धि हो रही है तथा अन्न की कमी है। इससे दूसरे देश से अन्न की आयात के लिये अपार धनराशि का प्रतिवर्ष व्यय होता है। यही कारण है कि राष्ट्रीय नेताओं ने जन्म-निरोध तथा परिवार नियोजन पर अधिक बल दिया है। प्रेस, विशेष कर फिल्म तथा कुछ नव स्थापित जन्म-निरोध अस्पताल जनसंख्या में वृद्धि पर रोक लगाने के लिये प्रचार कर रहे हैं। बड़े बड़े नेतागण भी राष्ट्र के हित के लिये इस पर जोर दे रहे हैं।

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में देश की आबादी १०० मिलियन (१०) करोड़ से कम थी, अठारहवीं शताब्दी के मध्य में आबादी बढ़कर १३ करोड़ हो गई। १९वीं शताब्दी के मध्य में १५ करोड़ तक इसकी वृद्धि हुई तथा एक वर्ष से भी कम समय में आबादी लगभग दुगनी हो गई है, ३६ करोड़। भावी गणना में और भी अधिक वृद्धि होगी।

जनसंख्या में वृद्धि केवल भारत में ही नहीं वरन् साधारणतः सारे देश-विदेश में हो रही है। यूरोपीय देशों में जैसे इटली में जनसंख्या की वृद्धि समस्या बन चली है। लार्ड बोयड आर, जो कि संयुक्त राष्ट्र आहार

तथा कृषि के संचालक थे, उनका कहना है कि आधुनिक जगत् की जनसंख्या १६०० मिलियन मानी जाती है, परन्तु यह बीसवीं शताब्दी के अन्त तक ३२०० मिलियन हो सकती है।

जनसंख्या पर रोक कैसे लगाई जाय ?

यह जगत इन करोड़ों व्यक्तियों को खाना किस प्रकार देगा ? नये प्रकार की कृषि तथा उजाड़ भूमियों को भी कृषि के लिये उपयोग में लाने पर भी आबादी की वृद्धि के साथ अन्न में वृद्धि लाना असंभव है। अतः आबादी की वृद्धि को रोकना होगा। यदि जीवन यापन के स्तर को नीचा न लाया गया तो भूखमरी, अकाल, दुर्भिक्ष, तथा इनके फलस्वरूप नैतिक पतन होगा। राष्ट्रसंघ के विशेष दूत इस समस्या को सुलझाने में व्यस्त हैं। विश्व राष्ट्र कमीशन अब रूस तथा सुदूर पूर्व के देशों की आर्थिक कौन्सिल की सलाह से कार्य कर रहा है परन्तु शायद ही इस कमीशन के किसी सदस्य को आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो।

इसमें सन्देह नहीं कि सिद्धांततः यह ठीक है कि आबादी रोकनी चाहिये। परन्तु कैसे ? हां पारिवारिक योजना के साधन द्वारा ही यह संभव है। परन्तु इसका अर्थ क्या है ? भारत की स्वास्थ्य मंत्रिणी राजकुमारी अमृतकौर इसका उत्तर देती हैं "मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारा शिक्षित वर्ग खासकर नगर वासियों को ही दृष्टि मे रखकर विचार करता है। गरीब वर्गों में भी संभवतः ऐसी स्त्रियां हैं जो हमारे नगरों के स्वयं सेवकों की सेवायें प्राप्त कर सकती हैं। परन्तु वे

समाज सेवक भी जन्म निरोध के लिये कृत्रिम साधनों का ही विचार करते हैं। पाश्चात्य देशों में ऐसा विचार अत्यंत गहरा पड़ गया है। मैं इस विचार के साथ सहमत होने में पूर्णतः असमर्थ हूँ।" कृत्रिम साधनों के प्रयोग से यही अभिप्राय है कि पारिवारिक योजना सफल हो सके। यह कितनी दयनीय अवस्था है कि अमृत कौर जैसे कुछ महान् व्यक्तियों के अतिरिक्त हमारे सभी शिक्षित नेतागण भी पाश्चात्य की नकल करने के लिए इतने निम्नस्तर पर उतर आते हैं। वे अपनी संस्कृति तथा परम्परा की जरा भी परवाह नहीं करते

सर्वोत्तम समाधान

वैदिक आचार्यों ने विद्यार्थियों के लिए अखंड ब्रह्मचर्य का नियम लागू किया है। जब वे अध्ययन समाप्त कर लेते थे तब उनको वैवाहिक जीवन में प्रवेश करना पड़ता था—यह वैवाहिक जीवन शारीरिक सुखों के उद्देश्य से नहीं वरन् सन्तति के लिए आवश्यक था। आत्मसंयम के द्वारा नैतिक शक्ति तथा आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त होती है। आत्मसंयम के द्वारा वे नैतिक पूर्णता तथा आध्यात्मिक विकास को प्राप्त करते हैं।

आत्मसंयम के सिवा जनसंख्या की बढ़ती को रोकने का कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है। जन्म निरोध अस्पताल तथा कृत्रिम साधनों के प्रसार का भारतीय समाज में गहरी जड़ नहीं पकड़ सकते क्योंकि यहां की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। भारतवर्ष हो अथवा अन्य कोई भी देश, आत्मसंयम के बिना कोई भी साधन नैतिक तथा आध्यात्मिक रूप से सफल नहीं हो सकते।

भारतवर्ष में जन्म निरोध के कृत्रिम साधन के विरुद्ध सबसे पहले महात्मा गांधी जी ने आवाज उठाई थी। कृत्रिम साधन विवाहित लोगों को तो छूट देते हीं हैं साथ ही साथ अविवाहित भी अश्लीलता में अनुरक्त हो जाते हैं। गांधी जी ने कहा था "यदि ग्रामीण लोगों ने आत्म-संयम का अभ्यास किया तो वे अपने परिवारों को कृत्रिम साधनों की अपेक्षा सुगमतया सीमित कर सकते हैं। कृत्रिम साधन पाप कर्म को बढ़ावा देते हैं। यह उपचार रोग से भी कहीं अधिक भयंकर है।"

भौतिकवादियों द्वारा विरोध

गांधी जी के ऐसा कहते ही बहुत से मानी नेता, डाक्टर, वकील तथा शिक्षा विभाग के लोग—यहां तक कि महात्मा जी के कुछ शिष्य तक इसके विरोध में उठ खड़े हुये। उनका कहना था कि नर नारियों में नैसर्गिक प्रवृत्ति को रोकने से बुरे परिणाम उत्पन्न होंगे, समाज के लोग स्नायु दौर्बल्य से पीड़ित होंगे, जीवन का उत्साह जाता रहेगा आदि आदि। परन्तु उनके ये सारे विरोध इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उनमें नैतिक आचरण की कमी है, वे सभी आत्मसंयम के मूल्य को नहीं जानते। भारतीय शास्त्रों में आत्मसंयम का महत्व सर्वत्र बतलाया जाता है परन्तु आधुनिक व्यक्तियों को यदि विदेशी लोगों के शब्दों का प्रमाण न दिया जाय तो उनकी समझ में बात नहीं आती।

आत्मसंयम हानिकारक नहीं है

सर लायोनल बेल लन्दन के रायल कालेज के प्राध्यापक थे। वे कहते हैं कि यौन-संयम ने अब तक किसी को

भी हानि नहीं पहुँचाई है। कौमार्य का पालन अधिक कठिन नहीं है। हां इसके लिये मानसिक स्थिति की आवश्यकता है।

प्रोफेसर ऑस्टेबुर्ग उपर्युक्त प्रोफेसर के साथ सहमति रखते हुये कहते हैं—यौन प्रवृत्ति इतनी अन्धी तथा शक्तिशाली नहीं है कि वह नैतिक शक्ति तथा विवेकबुद्धि के द्वारा नियन्त्रित तथा निगृहीत न हो सके। इसके अभ्यास से मनुष्य सुन्दर स्वास्थ्य तथा सतत वृद्धिमान नवशक्ति को प्राप्त करता है।

सर एन्ड्रिय क्लार्क का भी ऐसा ही कथन है—आत्म-संयम से हानि नहीं है। इससे विकास में कोई बाधा नहीं पहुँचती है। प्रत्युत यह शक्ति तथा ग्रहण-क्षमता को बढ़ोत्तरी देता है।

प्रख्यात अमेरिकन कम्यूनिस्ट श्री जोसेफ एच० जे० स्पैंग्लर ने भी आत्मसंयम को ही जन्म-निरोध के लिये एकमेव उपचार बताया है। "नैतिक-संयम ही जनसंख्या की वृद्धि को रोकने का एकमेव उपचार है।"

गांधी जी ने वैयक्तिक उदाहरण के द्वारा ही अपने आलोचकों को उत्तर दिया। अपनी आत्म कहानी में वे कहते हैं—"मैंने १९०६ में ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प किया। ईश्वर की शक्ति में श्रद्धा रखकर मैं इसका पालन करने लगा। तब से आत्मसंयम का अभ्यास यथासंभव होता रहा।" गांधी जी अनुभवी व्यक्ति थे। वे जो कुछ भी कहते थे उसका आधार अनुभव ही होता था। उनका दर्शन आराम कुर्सी का दर्शन न था। जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य ही प्रथमापेक्ष्य गुण

है। उनका कहना है—"मैं मानता हूँ कि मन, वचन तथा कर्म से पूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन ही आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करने के लिये प्रमुख गुण है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है सभी इन्द्रियों पर पूर्ण निरोध। पूर्ण ब्रह्मचारी के लिये कुछ भी असंभव नहीं है।

यद्यपि यह स्पष्ट है कि समाज के लिये भीष्म, हनुमान अथवा लक्ष्मण जैसे अखंड ब्रह्मचारियों के समान बनना तथा अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करना असंभव है फिर भी यह आवश्यक है कि वे अपने नैतिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिये अपने वैवाहिक जीवन में संयम रखें। बर्नाडशा जो कि बहुत विद्वान् तथा आध्यात्मिक व्यक्ति थे उन्होंने भी इसी सत्य को कहा—'यदि हम अपनी कामना का दमन नहीं करते तो हम अपना ही विनाश कर डालते हैं।"

चार्वाक के अनुगामियों ने उपर्युक्त सुझाव से संतुष्ट न होते हुये निम्नांकित तरीके से उसका इस प्रकार विरोध किया—"यद्यपि आत्मसयम का आदर्श स्तुत्य है फिर भी उसके द्वारा जन्म-निरोध की समस्या का हल नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य के ब्रह्मचर्य पालन में वर्ष में एक बार भी खण्डन होने से गर्भ ठहरने की सम्भावना को रोका नहीं जा सकता।" गृहस्थ लोग स्वतः ही इस कथन की मूर्खता को समझें तथा ठीक निष्कर्ष निकाल लें। हा यह तो निर्विवाद सत्य है कि यदि मनुष्य शुद्ध, संयमी तथा अनुशासित हो तो अति आबादी की समस्या बहुत हद तक सुलझ जायगी। इसमें किसी प्रकार का सदेह नहीं।

कृत्रिम साधनों से खतरा

'मेरी राय में, हम अपनी सभ्यता एवं परम्परा के

अनुसार साधनों के द्वारा ही जन्म-निरोध को प्रोत्साहित कर सकते हैं। भारत वर्ष में ऋषियों तथा महात्माओं ने ब्रह्मचर्य पर जितना बल दिया है उतना संभवतः अन्य किसी भी देश में ब्रह्मचर्य पर बल नहीं दिया गया है। अतः अति आबादी के विरुद्ध संग्राम करने के लिये हमारे शस्त्रागार में प्रथम शस्त्र ब्रह्मचर्य ही है। यह मनुष्यों तथा स्त्रियों, विशेषतः मनुष्यों के लिये आवश्यक है। साधारण लोगों को कृत्रिम साधन आसान मालूम पड़ता है, परन्तु मैं उन्हें महान् खतरा समझता हूँ। आसान वस्तुयें खतरे की ओर ले जाती हैं परन्तु सीधा एवं संकीर्ण मार्ग ही मुक्ति की ओर ले जाता है। यदि मनुष्य की पाशवी वृत्तियों को प्रोत्साहित किया गया तो मनुष्य-मनुष्य नहीं रह सकेगा। —(हरिजन)

राजकुमारी अमृत कौर ने हमारे देश की वास्तविक भावना को व्यक्त किया है। भारत की स्त्रियों को भौतिकवाद के विरुद्ध युद्ध करने में महत्वपूर्ण कार्य करना है। युग-युगान्तरों से स्त्रियों ने ही हमारे समाज के आध्यात्मिक चरित्र की रक्षा की है। क्योंकि उनमें स्वाभाविक धार्मिक प्रवृत्ति है। आधुनिक भौतिकवादियों के दर्शन को मानना उनके लिये अभद्रकर है। महात्मा जी ने कहा था—"मेरी राय में कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तान-निरोध करना स्त्रियों के प्रति अपमान सूचक है। मुझे सन्देह नहीं कि अधिकांश स्त्रियां उन्हें अपने सम्मान के विरुद्ध समझेंगी।"

अब वह समय आ गया है कि हमारे देश के नेतागण कृत्रिम साधनों द्वारा जन्म-निरोध के अशिष्ट एवं खतरनाक परिणामों को समझें तथा आत्मसंयम, बाल

विवाह को उठाने तथा शुद्ध स्वस्थ जीवन बिताने के लिये देश-व्यापी प्रचार का आयोजन करें। यह प्रचार विशेष कर ग्रामों में हो क्योंकि वास्तविक भारत ग्रामों में ही पाया जाता है। अमृत कौर ने पुनः बलपूर्वक कहा है—"हमारे देश में कृत्रिम साधन पूर्णतः अव्यवहार्य हैं। क्योंकि हमारे यहां के लोग अनभिज्ञ हैं, वैज्ञानिक औषधीय सहायता की कमी है, तथा उनका मूल्य भी अधिक है। पश्चिम के लोगों ने कई वर्षों से कृत्रिम साधनों का व्यवहार किया है; मैं बलपूर्वक कहती हूँ कि इससे उनको शारीरिक, मानसिक अथवा नैतिक किसी प्रकार की सफलता प्राप्त नहीं हुई है। इसके विपरीत उनका नैतिकस्तर नीचा हो गया है तथा मनुष्य एवं स्त्री सन्तानोत्पत्ति के उत्तरदायित्व की अवहेलना करने लगे हैं। यह ठीक है कि अति आबादी को रोकने के लिये जन्म-निरोध की भारत में आवश्यकता है परन्तु जितना ही अधिक मैं स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्य करती हूँ। जितना ही अधिक मैं रोगी मानवता के सन्निकट आती हूँ उतना ही अधिक मुझे यह यह स्पष्ट होता जाता है कि इन कृत्रिम साधनों को व्यवहार करना हमारे लिये संघातक सिद्ध होगा।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि आत्मसंयम में तब तक सफलता नहीं मिल सकती जब तक कि मनुष्य जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण न रखे। आत्मसंयम केवल आबादी की वृद्धि रोकने के लिये नहीं अपितु राष्ट्र की नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिये भी मौलिक सिद्धांत है। यह भारत का कर्त्तव्य है कि वह आत्मसंयम की विजय को सारे संसार के लिये प्रमाणित करे।

—:o:—

१७. सिनेमा की समस्या

सिनेमा स्वतः कोई बुराई नहीं है, हां साधारणतः इसके अधिक व्यसन से स्वास्थ्य पर हानि पहुँचती है तथा नेत्रदृष्टि भी कमजोर हो जाती है। यह बहुत ही निषिद्ध है। जब इसमें वैषयिक चित्र आते हैं, इनके द्वारा लोगों में वासना, इन्द्रिय उत्तेजन तथा अनैतिक भावनाओं जैसे काम, क्रोध, क्षोभ अथवा किसी प्रकार की भी वासना का स्फुरण होता है। हां शिक्षा प्रद, धार्मिक, तथा आध्यात्मिक चित्रों के द्वारा कोई भी हानि नहीं होती। परन्तु मनुष्य में सदा से यह आदत रही है कि वह नैतिक नियम तथा संस्कृत की सीमा के बाहर जाना चाहता है।

—:०:—

१८. आसुरी आन्दोलन

आत्म सम्मान का आन्दोलन जगत के लिये वरदान है। इस आन्दोलन के सदस्य को हर प्राणी में अपनी आत्मा का दर्शन करना चाहिये। वह मन, वचन तथा कर्म से कभी किसी की हानि न करे। इससे आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति होगी। इसके संस्थापक की जय हो।

परन्तु यदि सदस्यगण रामायण तथा अन्य ग्रन्थों को घृणा तथा द्वेष के कारण जलाने लगें, लेकिन यदि वे अभिमान तथा बलपूर्वक दूसरों से सम्मान को प्राप्त करना चाहें यदि वे विविध प्रकार से दूसरों को कष्ट दें, तब तो यह सचमुच ही राक्षसी आन्दोलन है। ऐसे आन्दोलन का संस्थापक कोई रावण अथवा कंस का बड़ा भाई रहा होगा। तथा इसके सदस्य बक, त्रिणावर्त्त, व्योम तथा केसिन के ही अवतार होंगे।

न्याय दल अथवा न्याय आन्दोलन प्रशंशनीय है। जो किसी के प्रति अन्याय एवं अत्याचार होने पर न्याय की मांग करता है, जो न्याय की स्थापना करता, जो अपने जीवन, समय, शक्ति, धन तथा सर्वस्व को न्याय के लिये अर्पित करता है वही न्याय आन्दोलन का सदस्य बन सकता है। वह इस जगत में देवता ही है। वह शीघ्र ही नित्य वस्तु अथवा ब्रह्म को प्राप्त कर लेगा। परन्तु जो द्वेष, ईर्ष्या, अशान्ति उत्पन्न करने, दलगत स्वार्थ एवं संकीर्णता को लेकर दूसरों को कष्ट पहुँचाने के लिये काय करता है उसने राक्षसी वृत्ति का अवलम्बन किया है। मोह तथा भ्रम से उसकी बुद्धि मारी गई है। वह इस जगत में निकृष्टतम मनुष्य है।

घृणा, स्वार्थ, ईर्ष्या के कारण जो आसुरी आन्दोलन उठ खड़े हुए हैं वे शीघ्र ही शान्त हो जायेंगे। वे रह नहीं सकते। क्योंकि उनका आधार सत्य नहीं है। वे जगत को बहुत ही नुकसान पहुँचाते हैं।

हे प्रभु! लोगों को शुद्ध, सूक्ष्म, बुद्धि, ज्ञान, शुद्धता, आध्यात्मिक बल, तथा आंतरिक प्रकाश शीघ्र ही प्रदान कर, इसमें एक मिनट भी देर न कर। वे सभी विरोचन के अनुगामी न बनें। उनके नेत्र से मोह के आवरण को दूर कर दें। मल तथा आवरण के कारण वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। उन्हें भी योगी तथा ज्ञानी बना दो। वे सभी भारतवर्ष के महिमावान् सुपुत्र बनें—वे सभी ऋषियों की सुयोग्य सन्तान बनें।

—:o:—

१६. गौ-रक्षा

भारतवर्ष में गौ, लक्ष्मी मानी जाती है। हर व्यक्ति गौ के विविध लाभों से परिचित है। वह दूध देती है तथा उसके बैल खेत जोतते हैं। इसके अतिरिक्त गौ से खाद मिलती है तथा जलावन भी। मृत्यु के उपरांत उसके हाड़ तथा चर्म भी उपयोगी सिद्ध होते हैं। इन सब कारणों से तथा गौदुग्ध की विशेषता को भी दृष्टि में रखते हुए हिंदुओं ने गो पालन को यज्ञ ही मान लिया है। पालतू जानवरों में गाय ही सबसे पवित्र मानी जाती है। अतः अब गौहत्या, चाहे जैसा भी इसका कारण क्यों न हो, आर्थिक अपव्यय भी है। गौ रक्षा के ऊपर राष्ट्रीय सम्पत्ति का बहुत सा भाग टिका हुआ है। इतना ही पर्याप्त नहीं, व्यक्तियों के स्वास्थ्य, बल तथा मस्तिष्क शक्ति भी इसी पर निर्भर है।

अब तो समय आ गया है कि हम गौओं को इस दलित अवस्था से ऊपर उठावें। गौरक्षा केवल इतना ही नहीं है कि गौओं को हत्या से बचाया जाय, परन्तु इसके साथ ही साथ अन्य भी बहुत से कर्त्तव्य हैं। गौ का प्रेम-पूर्वक पालन होना चाहिए। बुद्धिमानी पूर्वक उसका पोषण होना चाहिए। जिससे वह मानव-शक्ति के लिए अधिक उपयोगी दूध दे सके। मनुष्यों में गौ के लिए आदर का भाव भरना होगा। तथा सभी जीवों के प्रति एकता की भावना लानी होगी।

भारत में गौ की वर्त्तमान दुरवस्था को दूर करने के लिए गौरक्षा तथा उसके पालन पोषण के ज्ञान का अधिकाधिक प्रचार होना अत्यन्त आवश्यक है।

—:०:—

तृतीय अध्याय

युवकों के लिए

२०. युवकों के कल्याणार्थ

ग्रामों तथा नगरों के हमारे भाइयों में ईश्वर के प्रति सच्चा प्रेम उत्पन्न करना ही मैं सबसे प्रमुख कल्याण कार्य समझता हूँ। इसका अर्थ यह नहीं कि वे अन्ध विश्वासी बनें। परन्तु इस कारण वह भौतिकता में अति नहीं कर सकेंगे तथा साथ ही अज्ञात ईश्वर से भी अन्धविश्वासपूर्ण भय नहीं रखेंगे। सर्वशक्तिमान प्रभु की विवेकपूर्ण पूजा तथा उसकी भक्ति ही एकमेव मार्ग है जिससे कि मनुष्य अपने भाई बहनों के प्रति अपने हृदय में सच्चा तथा निष्काम्य प्रेम जाग्रत कर सकता है।

एक बार यदि नींव डाल दी गई तो उसके ऊपर इमारत आसानी से खड़ी की जा सकती है। अपराध की समस्या नहीं रहेगी तथा शांति एवं सुव्यवस्था की स्थापना आसानी के साथ हो सकेगी। जब धीरे-धीरे लोग इसको समझने लगेंगे कि जिस व्यक्ति को वे ठगना अथवा हानि पहुँचाना चाहते हैं, उसमें भी ईश्वर है तो वह अपने दुष्कृत्यों से बचेंगे।

मेरी समझ से इसकी प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय यह है कि ग्राम तथा नगरों के कल्याण-केन्द्रों में अथवा अनुकूल

स्थानों में नियमित सार्वजनिक सभाओं जैसा ही इनका भी आयोजन हो। इसे हर ग्राम तथा शहर में प्रचलित करना चाहिये। गांधी जी का भौतिक शरीर हम लोगों में से अदृश्य हो चुका है परन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि उनके साथ उनकी प्रार्थना भी अदृश्य हो जाय। आज भी इस आश्रम में तथा दिव्य जीवन संघ के सैकड़ों केन्द्रों में भक्तजन नित्यप्रति सायंकाल में एकत्र होकर प्रभु के नामों का कीर्त्तन, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा आध्यात्मिक विषयों का प्रवचन करते हैं।

युवकों को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग में लगाना चाहिये। हर प्रकार के अश्लील तथा सस्ते साहित्य पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिये। विदेशों से बहुत से सस्ते साहित्य मुफ्त बांटे जाते हैं जिनमें कि अश्लील चित्रों तथा लेखों की भरमार रहती है। जो युवक इनका अध्ययन करते हैं उनका जीवन के प्रति उल्टा दृष्टिकोण हो जाता है। सभाओं के द्वारा नैतिक जीवन के महत्व को समझाना चाहिये। गन्दे साहित्य को दूर करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। सिनेमा आदि के साथ भी यही बात है।

युवकगण वही सिनेमा देखें जो प्रेरक तथा उद्बोधक हो, परन्तु अधिकांश अंग्रेजी चल-चित्र ठीक इसके प्रतिकूल हैं। जहां तक मैं समझता हूँ भारतीय चल-चित्र पौराणिक हैं तथा इनका यदि उचित रूप से विश्लेषण किया जाय तो इनसे कोई हानि न होगी।

ड्रिल, व्यायाम तथा खेल—ये युवकों के लिये बहुत ही आवश्यक हैं। सारी कल्याण योजनाओं में इनको ही प्रथम स्थान मिलना चाहिये। मुझे यह देखकर प्रसन्नता

होती है कि यू० पी० सरकार विद्यार्थियों में यौगिक व्यायाम का प्रसार कर रही है। आसन, प्राणायाम तथा सूर्य-नमस्कार—ये सभी लड़के तथा लड़कियों के लिये बहुत ही हितकर हैं। इन्हें शनैः शनैः स्कूल तथा कालेजों में भी प्रसारित करना चाहिये।

इनको स्कूलों में ही सीमित न रखिये। हर ग्राम तथा कल्याण केन्द्र को चाहिये कि वह ग्रामों को आसन आदि की प्रशिक्षा दे। शरीर के विकास तथा विशेषकर आंतरिक अवयवों की पुष्टि के लिये यौगिक आसनों से बढ़कर कोई दूसरी चीज नहीं है।

ग्रामीणों में सफाई तथा आरोग्य जीवन के विज्ञान का भी प्रसार होना चाहिये। साथ ही साथ उनमें ईश्वर के प्रति श्रद्धा तथा पड़ोसियों के प्रति प्रेम का विकास भी करना चाहिये।

—:०:—

२१. भारत में शिक्षा सम्बन्धी सुधार

प्राचीन काल में भारत जगद्गुरु था। योग तथा अध्यात्यम ही भारत का प्राण रहा है। यही हमारी परंपरागत सम्पत्ति है। पाश्चात्य विज्ञान तथा भौतिक विचार का प्रवेश भारत में बहुत ही मन्द गति से होता है। इसका यह कारण नहीं कि भारतीय मन्द बुद्धि हैं परन्तु इसका कारण है आध्यात्मिक संस्कृति जो सदा से ही भौतिक विचारों का विरोध करती रही है। फिर भी विज्ञान अथवा तथाकथित पाश्चात्य सभ्यता ने जो नुकसान पहुँचाया है वह बहुत ही खेदजनक है।

इस समय यह आवश्यक है कि स्कूलों तथा कालेजों में आध्यात्मिक अथवा धार्मिक पुस्तकों को प्रचलित किया जाय, जिनसे युवकों में स्वस्थ विचार उत्पन्न हों तथा वे सच्चे मनुष्य बनने में समर्थ हो सकें। वास्तविक धर्म सार्वभौम है। इसके विषय में कोई झगड़ा नहीं। हर पैगम्बर अथवा प्रचारक ने एक ही सत्य का प्रचार किया है परन्तु संकीर्ण बुद्धि से उत्पन्न मत-मतान्तरों तथा कर्मकाण्डों के द्वारा वह सत्य ढक सा गया है। यदि युवकों को यह शिक्षा दी जाय कि मूलतः वे संसार के सभी भाइयों के साथ एक हैं तथा एक ही आत्मा रेंगते हुये कीड़े में, चहचहाती चिड़ियां तथा भूंकते हुये कुत्ते में है, तो हम उनमें समता, शांति तथा बन्धुत्व के बीज बोते हैं; अन्यथा नहीं।

निस्वार्थता ही वास्तविक धर्म है। ईश्वरीय सृष्टि के लिये जीना ही दिव्य जीवन है। हर भारतीय के नस-नस में निष्कामता का संचार होना चाहिये। तभी भारत को राजनीतिक स्वतन्त्रता शोभा देगी।

निष्कामता का सन्देश स्त्रियों के लिये जितना हृदयग्राही है उतना पुरुषों के लिए नहीं। स्त्री स्वभावतः निस्वार्थ तथा निष्काम होती है। प्रेम, दया, सहनशीलता, सहानुभूति तथा अधिकांश दैवी सम्पत्तियां उसके जन्मजात गुण हैं। भारतीय स्त्रियां सरल तथा सीधी होती हैं। धृष्टता तथा भ्रष्टाचार से वे अलग हैं। यही कारण है कि हर साधु ने महात्मा गांधी ने भी—उनकी प्रशंसा की है।

यदि कानून के द्वारा स्कूलों में आध्यात्मिक उपदेश की अनुमति न मिले तो शिक्षा के अतिरिक्त भी इसको

स्थान मिलना चाहिये। छात्रगण स्वतः ही नियमित गीता का अध्ययन करें तथा गीता-कुशल शिक्षक उनको सहायता दें। गीता में आध्यात्मिकता का सारांश है। गीता को सार्वभौमिक ग्रन्थ माना गया है।

विद्यार्थियों को गांधी जी की योजना के अनुसार रचनात्मक कार्यों के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए। रविवार के दिन पड़ोस के ग्रामों में जायं, लोगों को आरोग्य तथा स्वास्थ्य की शिक्षा दें। अपने कार्यों के द्वारा सिद्धांतों का प्रदर्शन करें तथा गरीबों की जो कुछ भी हो सके सेवा करें। मेडिकल विद्यार्थियों को चाहिये कि वे औषधि प्रदान करें।

मैं व्यक्ति के सुधार पर सबसे अधिक बल दिया करता हूँ क्योंकि व्यक्ति के सुधार से ही राष्ट्र भी सुधर सकता है। हर विद्यार्थी गीता को अपने जीवन में उतारे। हर बालक तथा बालिका पूर्ण बने।

भारत माता—हमारी प्रिय माता अपने बच्चों पर गौरव करेगी। वह पुनः अपने कुपुत्रों से प्राप्त पतितावस्था से उठकर आध्यात्मिकता की घोषणा करेगी तथा समस्त जगत को जाग्रत करेगी। हमें उसके बच्चों में प्रेम, निष्कामता तथा बन्धुत्व भावना का संचार करना होगा। यह कार्य महान् तथा गम्भीर है। परन्तु हमारे पीछे ईश्वर है। उसकी इच्छा होकर ही रहेगी।

—:०:—

२२. शिक्षा तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण

ऋषियों तथा ज्ञानियों की भूमि भारत अभी भी दलदल में फसी हुई है। जनता में अधिक निरक्षरता है। पाध्यापक, शिक्षक तथा विद्यार्थियों को चाहिए कि वे छुट्टियों में गांवों में जाकर उनको शिक्षित करें। रात्रि पाठशाला के द्वारा लोगों को शिक्षित बनावें। महाराजों तथा जमींदारों को उन्हें पर्याप्त सहायता देनी चाहिए। योरप तथा अमेरिका के साथ भारत की तुलना तो कीजिए। यहां पर निरक्षरों की संख्या अन्य सभी देशों की अपेक्षा अधिक है।

लड़के तथा लड़कियों के लिए राष्ट्रीय पाठशाला तथा महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय खुलने चाहिए। उनको सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिए। तभी राष्ट्रीय भावना का जागरण हो सकता है। जो शिक्षा आपको धर्म तथा सत्य के मार्ग में प्रवृत्त करती है, जो आपके चरित्र का निर्माण करती है, जो आपको मुक्ति, पूर्णता तथा आत्म ज्ञान की प्राप्ति में सहायता देती है तथा साथ ही साथ सचाई के साथ जीविकोपार्जन के लिए योग्य बनाती है वही सच्ची शिक्षा है।

हिन्दू सभा, सेवा दल अथवा समिति तथा शारीरिक व्यायामालय देश के हर भाग में स्थापित होने चाहिए। इनको सुचारुरूप से संचालित करना चाहिए! इन संस्थाओं के द्वारा आत्मा तथा हृदय की सेवा करना आपका कर्त्तव्य है। आप सच्ची भावना का विकास कर सकेंगे। आपका हृदय शीघ्र ही शुद्ध हो जायगा।

समाज अथवा राष्ट्र विभिन्न जातियों तथा व्यक्तियों के द्वारा बना हुआ है। हर व्यक्ति को चाहिये कि वह अपना कर्त्तव्य पालन सुचारुरूपेण करे। वह सबल तथा स्वस्थ हो जिससे कि उसके कर्त्तव्य का पालन हो सके। अन्यथा राष्ट्र अथवा समाज सदा दुर्बल हो जाता है। उसका पतन तथा ह्रास होने लगेगा।

केवल जवानी के जोश से ही काम न होगा। आपके अन्दर सच्चा प्रेम होना चाहिये। आपके कण-कण में शुद्ध प्रेम का स्पन्दन होना चाहिये। यदि आपके अन्दर इस तरह की भावना का अभाव है तो मानव-सेवा के द्वारा अधिकांश रूप में इसको विकसित कीजिए। महान् ऋषियों तथा सन्तों के जीवन को बारम्बार पढ़िए। इन लोगों ने धर्म के लिये अपने जीवन को अर्पित कर दिया था। कुछ वर्ष तक किसी गुरु के अधीन रह कर सेवा कीजिए। उनकी सेवा कीजिए। उनका सम्मान कीजिए। उनकी आज्ञा का पालन कीजिए। आज्ञाकारिता त्याग से भी बढ़ कर है। आप गुरु के सद्गुणों तथा चेतना को अपने अन्दर लायेंगे। स्वयं नेता बनने का प्रयास न कीजिए। यदि हर आदमी नेता बनना चाहेगा तथा हर व्यक्ति आदेश देना चाहेगा तो आन्दोलन कभी भी सफल नहीं हो सकता। सेवा करना सीखिए। आप देश तथा धर्म की सच्ची सेवा कर सकते हैं।

जगत को स्वस्थ माताओं, स्वस्थ तथा सबल लड़के और लड़कियों की आवश्यकता है। आज हम भारत में क्या देख रहे हैं। जिस देश में भीष्म, द्रोण, अर्जुन, अश्वत्थामा, कृपा, परशुराम तथा अनेक वीर योद्धा

उत्पन्न हुए थे वही देश आज दुर्बलों, पुरुषत्वहीन व्यक्तियों से भरा हुआ है। स्वास्थ्य के नियम की उपेक्षा तथा तथा अवहेलना हो रही है। राष्ट्र कष्ट भोग रहा है। जगत को अनेकानेक शूरवीरों की आवश्यकता है जो इन पांच सद्गुणों से सम्पन्न हों, जिनको कि आत्मज्ञान प्राप्त हो जिनमें अहिंसा, सत्यम्, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह हो। वे ही जगत तथा समाज की सच्ची सेवा कर सकते हैं। वे ही स्वतन्त्रता स्थापित कर सकते हैं।

विधवा स्त्रियां, अनाथ बच्चे तथा गौओं की रक्षा करनी होगी हमारे ग्रेजुएट युवक व्यवसाय तथा कृषिपक्ष की अवहेलना न करें। उन्होंने अपने खेतों की उत्पादिका शक्ति में वृद्धि लानी होगी। इस दिशा में उनको बहुत सा काम काम करना है। तभी वे स्वतन्त्र रह सकते हैं। वे काफी रुपया कमाकर जनता को शुद्ध दूध, मक्खन आदि आवश्यक वस्तुओं को देकर भी पर्याप्त रुपया कमा सकते हैं। देशी पदार्थों को ही उपयोग में लाकर व्यवसाय की उन्नति कीजिए। इससे आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त होगी आर्थिक स्वतंत्रता अनिवार्य है। भारत चीनी, कागज, घास, सलाई, वस्त्र इत्यादि का भी व्यवसाय कर सकता है।

—:०:—

२३. सांस्कृतिक शिक्षा की आवश्यकता

आज के विद्यार्थियों को सच्ची शिक्षा देने की आवश्यकता है। वे विद्यार्थी ही हमारे भावी नागरिक हैं। वे देश की आशा तथा गरिमा हैं। वे राष्ट्र के घायल हृदय

का उद्धार करेंगे। वे स्वयं के ऊपर अपना शासन रखेंगे तथा शांति, सम्पत्ति, समता, सुख तथा विश्व बन्धुत्व के बीज बोयेंगे। मनुष्य के अन्तस्तल में जो ईश्वरीय पूर्णता है उसको खोज निकालने की विधि का नाम ही शिक्षा है। इसका अर्थ है आत्मा को व्यापक बना देना न कि उसको अहंकार तथा स्वार्थ के बन्धनों के द्वारा और भी जकड़ देना। मानव जीवन के विविध पहलुओं का सम्पूर्ण विकास ही शिक्षा है। जीवन के हर क्षेत्र में पूर्णता लाना ही शिक्षा का उद्देश्य है। मानव जाति को प्रबुद्ध बनाना, मनुष्य की निम्न प्रकृति को नष्ट करना, सामाजिक व्यवस्था को सुधारना, विद्यार्थियों को सुशिक्षित कर उनके बाह्य तथा आंतर्जगत में उन्नति के द्वारा मानव जाति का कल्याण करना। सच्ची शिक्षा की जांच यही है कि इसके द्वारा ज्ञान, प्रेम तथा सेवा इन तीनों का सर्वांगीन विकास हो।

वे विद्यार्थी जिन्होंने कि शिक्षा के द्वारा अपने जीवन को अनुशासित बनाया है, जिन्होंने नम्रता का अर्जन किया है, जिनको चारित्रिक बल तथा सदाचरण प्राप्त है, जिन्होंने अपने जीवन नित्य आध्यात्मिक मूल्यों के अनुसन्धान के लिये अर्पित कर दिया है – वे ही विश्व-बन्धुत्व, सार्वभौम शांति तथा समता की संस्थापना कर सकते हैं।

वे विद्यार्थी ही जिन्हें विश्व विद्यालयों ने शारीरिक, मानसिक, तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में वैज्ञानिक रूप से उनकी आन्तरिक क्षमताओं के प्रस्फुटन के लिये सच्ची शिक्षा प्रदान की है वे ही सबल राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं तथा वे ही समस्त मानव जाति की आध्यात्मिक उन्नति में स्वरूप ला सकते हैं।

शिक्षा केन्द्रों में केवल व्यावसायिक शिक्षण तथा औद्योगिक प्रशिक्षण ही नहीं मिलने चाहियें वरन् सम्पूर्ण व्यक्तित्व के सर्वांगीन विकास के लिए पूरे साधन मिलने चाहिए। स्कूल, कालेज तथा विश्व विद्यालयों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों को नेता तथा राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, विद्वान तथा सैनिक और जीवन के हर क्षेत्र में कुशल बनाने के अतिरिक्त उन्हें सन्त, ज्ञानी, दार्शनिक तथा महात्मा के रूप में भी परिणत करे। शिक्षा संस्थाओं की वर्त्तमान शिक्षा पद्धति में पूर्ण परिवर्त्तन लाने की आवश्यकता है। विद्यार्थियों के लिए केवल उन्हीं पुस्तकों को सिलेबस में रखना चाहिए जिनके द्वारा कि वे शिष्टता, त्याग भाव, आत्मसंयम हृदय की शुद्धता पूर्णता आदि को सीख सकें। मनुष्य को पूर्ण बनाना और क्रमिक उद्बोधक शिक्षा— ये दोनों एक दूसरे से अलग नहीं वरन् अभिन्न हैं। शिक्षा का अर्थ केवल बुद्धि को प्रशिक्षित बनाना ही नहीं वरन् समस्त व्यक्ति को ही उद्बुद्ध करना है। विद्यार्थी समाज में नैतिक आचरण, सत्य तथा शुद्धता, शिक्षा तथा ज्ञान, संस्कृति तथा धर्म, सेवा तथा त्याग-भाव, चरित्र तथा सकल बल का विकास हो।

—:०:—

२४. प्रिंसिपलों तथा प्राधानाध्यापकों से

तामसिक आसुरी शक्तियों के प्रभाव से आज के अधिकांश विद्यार्थी अधार्मिक बन गए हैं। उनमें नैतिक शिक्षा नहीं है। उनमें ब्रह्मचर्य तथा नैतिक जीवन के सिद्धांतों का सम्यक् ज्ञान नहीं है। यही कारण है कि जब

वे जीवन संग्राम में उतरते हैं तो उनको बहुत से कष्टों का सामना करना पड़ता है।

शिक्षकों तथा प्राध्यापकों के ऊपर विद्यार्थियों को सदाचार में प्रशिक्षित करने तथा उनमें चरित्र का निर्माण करने का बहुत बड़ा भार है। उनमें भी नैतिक पूर्णता होनी चाहिए। अन्यथा 'अन्धेनैव नीयमानायथान्धाः" की नीति चरितार्थ होगी।

शिक्षक बनने से पहले आप अपने उत्तरदायित्व को अच्छी तरह से समझ लीजिए। भाषण देने में विद्वत्ता मात्र ही पर्याप्त नहीं है। शिक्षक अथवा प्राध्यापक के लिए केवल इतना ही शोभा की बात नहीं है। विद्यार्थी गण देश की भावी आशा हैं। वे राज्य के स्तम्भ हैं। उनको यदि उचित रूप से ढाला गया तो वे देश का महान् कल्याण कर सकेंगे। यह स्वयं आपके लिये महान योग है।

यदि आप उनके अध्ययन के लिए कुछ धार्मिक पुस्तकें भी अनिवार्य रखें तो आप उनका महान् कल्याण करते हैं। इसके द्वारा युवकों में नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति होगी।

यह आपका कर्त्तव्य है कि आप लड़कों को ब्रह्मचर्य का महत्व तथा आचारहीनता के दुष्परिणामों को समझा दें। आप उनको विभिन्न साधन बतलावें। जिसके द्वारा वे वीर्य की रक्षा कर सकें। वीर्य ही आध्यात्मिक शक्ति है जो कि उनमें छिपी हुई है।

संसार का भविष्य आप तथा आपके विद्यार्थियों पर निर्भर है। यदि आप सन्मार्ग में उनको प्रशिक्षित करते

हैं तो यह जगत आदर्श नागरिकों, सन्तों, योगियों तथा जीवन्मुक्तों से भर जायगा जो ज्योति, शांति, ज्ञान, आनंद तथा सुख को सर्वत्र विकीर्ण करेंगे।

हे शिक्षक तथा प्राध्यापक गण! अब तो जाग जाइये। अपने विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य, सदाचार, नैतिकता के मार्ग में ले जाइये। इस दिव्य कर्म को कभी न छोड़िये। इसके लिये आप नैतिक रूप से उत्तरदायी हैं। वे सभी योग, भक्ति, दर्शन तथा वेदांत पर कुछ धार्मिक पुस्तकें पढ़ें। उन्हें गीता, रामायण, भागवत तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थ भी सिखाइए। वे सभी प्राचीन ऋषियों तथा महात्माओं के विषय में जानें। यदि आप सचाई के साथ इस कार्य को करते हैं तो आपको निश्चय ही आत्म साक्षात्कार की प्राप्ति होगी। सच्चा बनिये। अपनी आखें खोलिये।

वह धन्य है जो अपने विद्यार्थियों को सच्चा ब्रह्मचारी बनाने के लिए प्रयत्नशील है। वह दुगुण रूप से धन्य है जो कि स्वयं सच्चा ब्रह्मचारी बनने के लिए प्रयत्नशील है। उन सबों को ईश्वर की कृपा प्राप्त हो। आदर्श शिक्षकों, प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों की जय हो।

—:०:—

२५. विदेश में रहने वाले भारतीय विद्यार्थियों से

सुदूर पवित्र प्राच्यदेश, ऋषियों तथा ज्ञानियों की पावनी धर्म भूमि से—जो आपकी मातृभूमि है, मैं प्रेम परिप्लावित हृदय के साथ आपको यह सन्देश भेज रहा हूँ। याद रखिये कि आप भारत की महान् संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। आपके उत्तर दायित्व महान् हैं। यही कारण

है कि मैं इस हिमालय के आश्रम से, गंगा नदी के तट से यह सन्देश प्रसारित कर रहा हूँ।

यदि आप आज की अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सावधानी के साथ अध्ययन करेंगे तो आपको पता चलेगा कि हम लोग कितने संकटकाल गुजर रहे हैं। आपको शीघ्र ही अपने कन्धों पर इन समस्याओं को उठाना होगा। क्योंकि पुराने लोग तो परलोक के यात्री बन जायेंगे। आपके सामने विविध तथा महान् कार्य हैं और अब इसकी आवश्यकता है कि आप अपने भीतर भारत की महान् यथा पवित्र संस्कृति को व्यक्त करें तथा मानव जाति को पथ-प्रदर्शन दें। आज समाज में सहिष्णुता, सत्य तथा प्रेम की भावना क्षीण होती जा रही है। आपके भीतर शान्ति, प्रेम तथा सत्य की शक्तियां हैं, जिनके द्वारा कि आप समस्त दुनियां को अपने अधीन कर सकते हैं। परन्तु ऐसा आप तभी कर सकते हैं जबकि आप दिव्य जीवन को अपने दैनिक जीवन में भी व्यवहृत करना सीख लें। आपको भारत की प्राचीन संस्कृति, उसकी सहनशीलता, विश्वकल्याण की भावना, शान्ति तथा समता के प्रति प्रेम, सत्य एवं अहिंसा में अविचल स्थिति को अपने जीवन में उतारना होगा। अतः दैनिक प्रस्फुटन के द्वारा स्वयं में परिणति लाइये। सेवा करने तथा सबों का कल्याण करने के लिये जीवन यापन कीजिये। अपने जीवन के उदाहरण के द्वारा लोगों को मार्ग दिखाइये कि किस तरह प्रेम, सहनशीलता तथा पारस्परिक एकता का जीवन बिताया जाय।

आपने सुदूर विदेशी भूमियों से होकर यात्रा की है। इसका उद्देश्य है कि आप उनकी संस्कृति के सभी अच्छे

गुणों को अपनावें परन्तु जब आप दूसरों से कुछ सीखते हैं तो आपको उसका बदला उनको देना चाहिये। और इसके लिये सांस्कृतिक परम्परा की मुक्ता से बढ़कर दूसरी कौन सी चीज हो सकती है? जब आप दूसरों को कुछ देना चाहें तो उदारता, सहनशीलता तथा सार्वभौमिक सारतत्व को ही उनके सामने रखें। सर्वत्र लोग इसकी प्रशंसा करेंगे क्योंकि सभी धर्मों एवं संस्कृतियों का सारतत्व यही है। सत्य एक ही है परन्तु बहुत सी जातियां मत मतांतर एवं स्वभाव भेद होने के कारण उस सत्य तक पहुँचने के लिये विभिन्न मार्ग हैं। यह विभिन्नता इसलिये है कि विभिन्न अवस्था वाले व्यक्तियों के लिये वह अनुकूल बन सके। मूलतः वह एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं क्योंकि वह एक ही तत्व की ओर ले जाते हैं। अतः अपने मन में सांप्रदायिक भावना का लेश मात्र भी न रखिए।

सभ्य संसार में धार्मिक अन्धविश्वास तथा सांप्रदायिक भावना को कोई स्थान नहीं है। बुद्धि प्रधान मनुष्यों के लिए तथा आज की सामाजिक जनतन्त्र सरकार के लिए भी उनका कोई स्थान नहीं है। आपको समय के अनुसार ही प्रगति करनी है। अतः आप सांप्रदायिकता को पूरी तरह से दूर कर डालिए।

मैं पुनः आपको याद दिला दूँ कि आप कल के नागरिक हैं। हमारी मातृ भूमि की आशा, सम्पत्ति तथा महिमा आपके ही हाथों में है। इस गौरवपूर्ण उत्तरदायित्व के लिए योग्य बनें। भारत के महापुरुषों के सच्चे प्रतिनिधि बनिए। नित्यप्रति के व्यवहार में इसके नेक आदर्शों को उतारिए। आप में से हर व्यक्ति भारत की महानता को प्रदर्शित कर सकेंगे।

एक दूसरे के प्रति घृणा तथा हिंसा भावना रखना हमारा आदर्श नहीं है। हम अपने पड़ोसियों तथा देशवासियों के साथ शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं। हमारी भावना सन्मति तथा पारस्परिक शुभेच्छा पर आधारित है। अनादि काल से भारत सदा सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य एवं शांति का सन्देश वाहक रहा है। भारत सुदीर्घ काल से संरक्षित अपने भव्य उदार आदर्शों को कैसे भुला सकता है? आधुनिक सांप्रदायिक दंगों के द्वारा आपने यह देख लिया कि घृणा कभी भी घृणा अथवा प्रतिकार के द्वारा नहीं जीती जा सकती; यह सदा याद रखिए तथा अपने पिछले अनुभवों एवं शिक्षाओं के आधार पर अपने स्वर्णिम भविष्य का निर्माण कीजिए।

हम एकता चाहते हैं। मत मतांतरों की खण्डित एकता नहीं वरन् शाश्वत सार्वभौम एकता। यह स्पष्ट है कि यदि आप कोई कार्य सफलतापूर्वक करना चाहते हैं तो उसके लिए संगठित शक्ति चाहिए। तभी आप शीघ्र उन्नति कर सकते हैं। क्या आपने वर्षा की छोटी-छोटी बूँदों से कभी शिक्षा ग्रहण की है? वह कभी अकेली नहीं चलतीं; यदि ऐसा करतीं तो सूर्य की प्रचण्ड किरणें उनको जमीन पर पड़ने से पूर्व ही सुखा देतीं। परन्तु मूसलाधार गिरने पर कोई उनको रोक नहीं सकता। वे पहाड़ों तथा तराइयों में बाढ़ लाती है, नदियों में प्रलयंकर रूप धारण कर और अदम्य गति से अपने मूल भाग को प्राप्त होती है। कितनी महान् शक्ति है: ठीक उसी प्रकार आप भी यदि अपने कार्य को संगठित होकर करते हैं तो जगत की कोई भी शक्ति आपको हानि नहीं पहुँचा सकती। कोई भी बल आपकी विजय को नहीं रोक सकता।

अतः सार्वभौमिक एकता की भावना को जगाइये। अपनी सांस्कृतिक सहिष्णुता को जीवन में उतारिये। जगत के सभी राष्ट्रों में शांति, प्रेम, शुभेच्छा एवं एकता लाने के लिये पारस्परिक आदान प्रदान की भावना के साथ कार्य कीजिये।

आप सबों को सर्वशक्तिमान प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त हो। आपके सारे कार्यों में ईश्वर आपको प्रेरणा तथा पथ-प्रदर्शन प्रदान करे।

—:o:—

चतुर्थ अध्याय

घरेलू तथा व्यावसायिक नीति

२६. घरेलू नीति

१—घर पर योग

कभी कभी पति पत्नी में धार्मिक एकता न होने पर घर नरक बन जाता है। यदि पति है तो उसकी अधार्मिक पत्नी उसको सद्ग्रन्थ पढ़ने, ध्यान में बैठने, तीर्थयात्रा करने, ब्रह्मचर्य पालन करने तथा महात्माओं की संगति करने में बाधा पहुँचाती है। यदि वह संन्यास न लेने की प्रतिज्ञा भी करता है तो भी उसको यह आशंका बनी रहती है कि कहीं वह संन्यासी न हो जाय। पति-पत्नी सदा झगड़ा किया करते हैं। काफी रुपये कमाने तथा पूर्ण आराम से रहने पर भी पति को मानसिक शांति प्राप्त नहीं होती। पत्नी पति को धमकाती है। मैं उन मनुष्यों का सिर पत्थर मारकर फोड़ दूँगी जिन्होंने इस पुस्तक को लिखा है तथा जिसने तुमको योग साधना के लिये प्रेरित किया है। मूर्ख लोग ही योग-साधना करते हैं। ऐसी अज्ञ तथा अधार्मिक स्त्री के साथ किस प्रकार कोई सुख से रह सकता है? इन भयंकर स्त्रियों के साथ रहने की अपेक्षा तो ताड़का जैसी राक्षसी के साथ निर्जन

वन में रहना कहीं अच्छा है। यदि आपकी स्त्री आपके आध्यात्मिक मार्ग में बाधा पहुँचाती है तो धीमे से उससे कह दीजिये कि आप संन्यास ले लेंगे। तब उसकी चेतना जगेगी।

यह पति का कर्त्तव्य है कि वह पत्नी को भी आध्यात्मिक मार्ग में प्रशिक्षित करे उसको कुछ क्षण कीर्त्तन करना चाहिये। उसको रामायण, भागवत तथा महाभारत जैसी धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय करना चाहिये। उसको समय समय पर उपवास करना चाहिये। पति उसको तीर्थयात्रा कराये तथा महात्माओं की संगति तथा हरिचर्या में सम्मिलित होने की अनुमति दे। स्त्री को चाहिये कि पति को यौगिक तथा आध्यात्मिक मार्ग में सहायता दे।

कुछ लोगों ने अपनी स्त्रियों के दुराचरण तथा उनके द्वारा आध्यात्मिक मार्ग में बाधा उत्पन्न होने के कारण ही संन्यास ग्रहण कर लिया है। यदि वे स्त्रियां अपने पति के मार्ग में बाधा न डालतीं तो वे गृहस्थाश्रम को कदापि भी न छोड़ते। बुद्धिमान स्त्रियों का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने पतियों को धार्मिक तथा आध्यात्मिक मार्ग में सहायता देकर उन्हें सुखी बनायें। तभी वे दोनों सुख तथा शान्ति के साथ घर में रह सकते हैं। धर्म ग्रन्थ कहते हैं—"धर्म के बिना वह गृह, चाहे वह प्रासाद ही क्यों न हो, कब्रिस्तान ही है।" पति भी अपनी पत्नी की आध्यात्मिक साधना में बाधा न दे। वह भी हर प्रकार से उसकी आध्यात्मिक उन्नति तथा शुद्ध जीवन में उसको सहायता प्रदान करे।

पति तथा पत्नी के बीच सच्ची मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक एकता हो। आध्यात्मिक साधना में पत्नी पति की सहायता करे तथा पति भी पत्नी की सहायता करे। ईश्वर साक्षात्कार ही आपका संकेत शब्द बने। शुद्ध आत्मा आपका मंत्र बने। धर्म आपका पथ प्रदर्शन करे।

७—पति तथा पत्नी

नासमझी तथा मतभेद के कारण पति पत्नी में रोज ही झगड़े हुआ करते हैं। स्त्री चाहती है कि पति उसकी हर आज्ञा का पालन करे तथा उसको हर तरीके से खुश रखे। क्या यह संभव है? अतः हर घंटे उन लोगों में झगड़ा हो जाता है; हां मुक्कामुक्की तो हमेशा नहीं होती परन्तु फिर भी रोज कुछ घंटों के लिये वे आपस में नहीं बोलते। यदि पति चिड़चिड़े स्वभाव का है तथा उसमें आत्मसंयम की कमी है तो कभी कभी मुक्का मुक्की तथा बेंत की छड़ी से पीटने तक की बारी आ जाती है। कभी कभी पति अपने चिड़चिड़ेपन के कारण बर्त्तनों को तोड़ देता है। यदि स्त्री श्रीमती सुकरात तथा जीजाबाई (श्रीमती तुकाराम) की तरह हुई तो मामला ठीक उल्टा ही निकलता है। वे अपने पति के सिर पर गर्जन एवं वर्षन किया करेंगी। कभी कभी स्त्री क्रुद्ध हो जाने पर भोजन पकाना बन्द कर देती है। वह कम्बल ओढ़कर पड़ रहती है तथा सिर दर्द अथवा पेट दर्द का बहाना बना देती है। बेचारा पति होटल आदि में जाकर खाता है तथा औफिस के लिये रवाना होता है। कभी पत्नी पति से कहे बिना ही अपनी माता के घर चली जाती है। गरीब,

निर्लज्ज, दुर्बल संकल्प वाला पति उसको नये नये वादे देकर बुला लाने के लिये ससुराल चला जाता है। पति की मन मानी यदि भोजन तैयार न हुआ तो स्त्रियों को गाली की बौछार सहनी पड़ती है। छोटी छोटी बातें ही उनके दैनिक झगड़े का कारण बन जाती हैं। बड़ी बातें तो इतनी अधिक हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है। आप ही खुद उनको जानते हैं।

परन्तु फिर भी यदि आप किसी गृहस्थ से पूछिये कि "कौन अच्छा है गृहस्थी का जीवन अथवा ब्रह्मचारी का जीवन ?" तो वह कहेगा कि गृहस्थ का जीवन ब्रह्मचारी के जीवन से सहस्र गुणा अच्छा है। वह व्यर्थ तर्कों के द्वारा व व्यर्थ के शब्दों से जोरदार रूप में इसको प्रमाणित करने की कोशिश करेगा। क्या आपको याद है कि एक राजा को शूकर का जन्म प्राप्त हुआ था। तथा वह अपने शूकर के बच्चों के साथ अत्यन्त प्रसन्न था। उसकी हालत भी इस राजा के समान ही है।

लोगों में न तो विवेक है और न वैराग्य ही है तथा न सूक्ष्म बुद्धि ही है। अतः वे ठीक ठीक नहीं देख पाते। उनकी बुद्धि मोह, भ्रम, वासना तथा अज्ञान से मलिन, तमसाच्छन्न तथा उल्टी हुई है। अतः वे नहीं जानते कि वास्तव में वे क्या कर रहे हैं ?

काम वासना के वशीभूत हो पति पत्नी प्रातःकाल में हुए झगड़े को भूल जाते हैं। वे समझते हैं कि उनका जीवन धन्य है। वे कुछ समय के लिये सुखद तथा पुष्पित वाणी का प्रयोग करते हैं। परन्तु उनके हृदय में सच्ची एकता तथा प्रेम नहीं है।

आत्मसंयम रखिये। काम से ऊपर को उठिये। सदाचारी बनिये। क्रोध का दमन कीजिये। जप, कीर्त्तन, ध्यान तथा स्वाध्याय में नियमित रहिये। आदर्श गृहस्थ का जीवन बिताइये। "गृहस्थों को सलाह" तथा "जीवन में सफलता के रहस्य"—इन पुस्तकों को पढ़िये। उनके उपदेशों को दैनिक अभ्यास में लाइए।

हे राम! अपनी स्त्री को देवी समझिए। वह आपके घर की लक्ष्मी है। जहां स्त्री का सम्मान होता है वहां धन, ऐश्वर्य, सफलता तथा शान्ति का साम्राज्य होता है। हे लीला, पतिव्रता बनिये। अपने पति से झगड़ा न कीजिये। सावित्री, अनुसूया तथा सीता बनिए। आप शुद्धता, भक्ति से युक्त जीवन के द्वारा इसी जन्म में परम धाम को प्राप्त करें।

—:०:—

२७. व्यावसायिक नीति

व्यावसायिक नीति भी है। व्यवसायी को इन आचारों का अभ्यास करना चाहिये। तभी वे पाप से लिप्त न होंगे। तभी उनकी उन्नति हो सकती है।

लोग कहते हैं कि व्यवसाय में उन्नति के लिये झूठ बोलना अति आवश्यक है। यह भारी भूल है। जो पूर्णतः ईमानदार तथा सच्चे हैं वे ही व्यापार में उन्नति प्राप्त कर सकते हैं। लोग उन्हीं के पास जायेंगे क्योंकि वे अपने व्यवहार में सच्चे हैं।

असत्य ने पहले पहल वस्त्र विक्रेता की दुकान में प्रवेश किया। जब आप पहले पहले वस्त्र विक्रेता के पास जाते हैं तो वह कहेगा कि अमुक वस्त्र ८) रु० प्रति गज है परन्तु कुछ समय तक बहस के बाद वह वही वस्त्र १ रु० ८ आने प्रति गज देने को तैयार हो जाता है। इस तरह का व्यवसाय अधिकांश व्यापार स्थलों में प्रचलित है। ठगी करना तथा झूठ बोलना—ये व्यवसायी के मौलिक गुण हैं। लोभ तथा बेईमानी के कारण उनका अन्तःकरण स्थूल हो गया है। अपने पास धन तथा सम्पत्ति के होते हुये भी वह इस संसार में दुख तथा शोक से संतप्त रहता है। उसके अनैतिक जीवन के कारण परलोक में भी उसके लिये दुख ही होगा। समझ मारी जाने के कारण वह यह नहीं जानता कि वास्तव में वह कर क्या रहा है ?

अनैतिकता से तात्पर्य लैंगिक व्यभिचार से ही नहीं है। जो झूठ बोलता तथा दूसरों को ठगता है वह भी अनैतिक जीवन ही जी रहा है। वह भी विस्तृत दृष्टिकोण से अनैतिक ही है।

व्यवसायी बाजार में वस्तुओं में मिलावट कर देता है, एक व्यक्ति गेहूँ में बालू मिला देता है, दूसरा घी, आटा तथा अन्य खाद्य सामग्रियों में भी मिलावट कर देता हैं। बढ़ई साधारण लकड़ी लगाकर सर्वोत्तम लकड़ी का दाम प्राप्त कर लेता है। ठेकेदार तीसरे दर्जे की ईंट लगा कर पहले दर्जे की ईंटों की कीमत प्राप्त करता है। ये सब ठगी के ही उदाहरण हैं।

व्यापार में यह सम्पत्ति भी किस काम की ? कुछ स्वादिष्ट भोजन खाना, हवागाड़ी में सैर करना, म्यूनिसिपल चेयरमैन बनना—इन सबों के द्वारा आप शाश्वत सुख को नहीं प्राप्त कर सकते। यह जीवन का लक्ष्य नहीं है। यह तो सुख की मूर्खतापूर्ण धारणा है। कितनी नीच धारणा है यह ! ये सब अज्ञ बच्चों के ही खिलौने हैं। ज्ञानी लोग तो इन पर हंसते हैं।

ईमानदारी के साथ अपनी आजीविका कमाइये। बेईमानी तथा ठगी के कारण आप असाध्य बीमारियों का शिकार बन जायेंगे। भगंदर, यक्ष्मा, पेट में घाव, फिस्चुला, बहरापन, गूंगापन, अन्धापन, हृदय तथा पेट में जलन, तथा दूसरे जन्म में अवयवों की विषमता आदि आपको प्राप्त होंगे। क्रिया तथा प्रतिक्रिया बराबर तथा प्रतिकूल होती है। इस जन्म में किये गये प्रत्येक कुकर्म के लिये आपको दूसरे जन्म में अवश्य ही दुख भोगना पड़ेगा। मन, वाणी तथा कर्म से सावधान रहिये। भला बनिये। भला करिये। कारण तथा कार्य के नियम को समझिये।

आप आय का दशांश दान में व्यय कीजिये। दान द्वारा अनेक पाप धुल जाते हैं। नियमित दान कीजिये। विपत्ति पड़ जाने पर कुछ दान कर देना प्रशंसनीय नहीं है।

उचित लाभ लीजिए। अपने व्यवहार में सच्चा तथा ईमानदार बनिये। अपने अन्तःकरण को सदा साफ तथा शुद्ध रखिए। प्रचुर दान कीजिए। आप अपने व्यापार में उन्नति करेंगे। आप व्यापार में कलुषित न बनेंगे।

भगवती लक्ष्मी सदा ही आप साथ देगी। हर पूर्णमासी के दिन सत्यनारायण-कथा कीजिये। धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं को दान दीजिये। विद्यालय, लड़कियों के लिये स्कूल, निःशुल्क प्रारम्भिक पाठशाला तथा आयुर्वैदिक औषधालय खुलवाइए। ग्रामों में कुएं खुदवाइये। संकीर्त्तन भवन बनवाइए। अपने लाभ को दानशील कार्यों में व्यय कीजिये। आपको बहुत पुण्य प्राप्त होगा तथा आप दूसरे जन्म में तथा परलोक में भी सुखी रहेंगे।

यदि आप सदा इसका ध्यान रखते हैं कि ईश्वर अथवा अन्तर्यामी आपके विचारों तथा कर्मों का निरीक्षण कर रहा है, यदि आपने कारण तथा कार्य के नियम को समझ लिया है तो फिर आप बुरा कार्य करने का साहस नहीं कर पायेंगे। आप सदा कुकर्म से दूर रहेंगे। तथा आप धीरे धीरे उनको त्याग देंगे।

यदि आपने वेदान्त के सत्य—एकता को जान लिया है तो आप दूसरों को धोखा न देंगे। दूसरों को धोखा देने का अर्थ है आप अपने आपको ही धोखा दे रहे हैं। दूसरों की सहायता के द्वारा आप अपनी ही सहायता करते हैं। सभी भूतों में एक ही आत्मा है। यही एकमेव सत्य है।

---

२८. औषधीय नीति

डाक्टर कभी भी किसी की गुप्त बात को किसी दूसरे से न कहे। किसी रोगी को हाथ में ले लेने पर, केवल इस कारण कि कल उसने फीस नहीं दी, उसकी देखरेख करने

से इनकार करना अनैतिक है। जब तक रोगी ठीक नहीं हो जाता तब तक उसका उपचार करने का नैतिक दायित्व उसी पर है। रोगी कुछ दिनों के बाद में भी फीस दे सकता है। तथा कथित व्यवासायिक नीति के कारण डाक्टर अविलम्ब बुलावा आने पर रोगी को देखने से कभी भी इनकार न करे। यदि रोगी ने दूसरे डाक्टर से भी राय ली हो तो उसको देखने से भी इनकार न कीजिये।

हर्निया आपरेशन के लिये सर्जन को ५००) रुपया मिलता है। रोगी आपरेशन टेबल पर है। उसकी पेडू खोल दी गई है। सर्जन को कुछ दूसरी बीमारी भी दिखाई देती है। उसको एक दूसरा आपरेशन भी करना होगा। यदि वह रोगी के पिता से कहता है कि आपको ५००) रु० और भी देने होंगे क्योंकि इस बीमारी का दूसरा आपरेशन भी करना होगा। यदि आप रुपये न दें तो मैं यह आपरेशन न करूँगा। यह मेडिकल नीति के विरुद्ध है। यहां दूसरे के जीवन मरण का प्रश्न है और वह सौदाबाजी कर रहा है। उसको सफलतापूर्वक आपरेशन कर देना चाहिये। बाद में वह नम्रतापूर्वक कुछ और रुपयों की मांग कर सकता है। वह भी उस स्थिति में यदि वह व्यक्ति देने योग्य है तो।

डाक्टर का मुख्य कर्त्तव्य है कष्ट को दूर करना। वह जितने भी कम समय में हो सके अपने रोगी को अच्छा कर दे। फीस के लालच के कारण पूर्ण उपचार में विलंब करना महान् अपराध है। रोगी के रोग बहुत दिनों तक न बनाये रखिये। यह भी महान् अपराध है।

अपने रोगियों पर प्रयोग न कीजिये। जीवन पवित्र है। आप जरा सोचिए तो कि यदि आप पर अथवा आपके किसी प्रिय निकट सम्बन्धी पर यदि कोई निर्मम सर्जन प्रयोग करने लगे तो आपको कैसा लगेगा।

यदि किसी को संक्रामक रोग का आक्रमण है तो डाक्टर को चाहिए कि वह जिस तरह भी हो उसको दूर कर दे। वह लोगों को विभिन्न साधन बतलावे जिसके द्वारा कि वे रोग को फैलने से रोक सकें।

डाक्टर को चाहिये कि वह स्वास्थ्य तथा आरोग्य, शिशुकल्याण, माताओं एवं बच्चों का इलाज आदि के विज्ञान का प्रचार भाषणों, प्रदर्शनों के द्वारा जनता में करे। यदि कोई गरीब व्यक्ति दवा के लिये आता है तो उसको औषधि मुफ्त ही दे दे। गरीबों की सेवा में उसको काफी दिलचस्पी तथा प्रसन्नता रखनी चाहिए।

रोगी को वह केवल जल का ही इन्जेक्शन न दे। उसे तो दयालु तथा कारुणिक डाक्टर बनना चाहिये। जल के लिये ही वह रुपये न ठगे। यह बड़ा भारी नैतिक व्यभिचार है। उचित फीस ले। उसका लक्ष्य लखपति बनना न होकर अच्छा डाक्टर बनना होना चाहिये। यह उसके लिये विशाल क्षेत्र है। इसके द्वारा वह अपने हृदय को शुद्ध बनाकर आत्मभाव के साथ सेवा के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है।

वह रोगी को गलत संकेत देकर न डरावे। ऐसा न कहे "यह तो असाध्य रोग है। यह तो टी० बी० की विकसित अवस्था है।" संकेत में प्रबल शक्ति है। गलत

संकेत के कारण रोगी की शीघ्र ही मृत्यु भी हो सकती है। वह सदा ही मधुर तथा साहस पूर्ण वाणी बोले 'डरो नहीं भाई, मैं शीघ्र इस रोग को अच्छा कर दूंगा। तुम शीघ्र ही चंगे हो जाओगे।" ऐसा डाक्टर ही कष्ट पीड़ित मानवता की सच्ची सेवा करता है।

रोगियों के दुख पर डाक्टर का हृदय पिघलना चाहिये। बार-बार जाकर वह रोगियों को निःशुल्क चिकित्सा करे। वह अपनी आय का दशांश रोगियों तथा गरीबों को औषधि देने में लगावे। डाक्टर को सदा इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि उपचार का विज्ञान उसने केवल व्यावसायिक लाभ के लिये नहीं वरन् अपने सामाजिक कर्त्तव्य पालन के लिये भी प्राप्त किया है। इसलिये अपने व्यवसाय के अतिरिक्त भी उसको सदा इस बात की ताक में रहना चाहिये कि कहां पर कष्ट है तथा कहां तक उसकी सहायता की आवश्यकता है। उसका कर्त्तव्य केवल कुर्सी पर बैठे रहकर टेलीफोन के द्वारा बुलाहट की प्रतीक्षा करते रहना ही नहीं है। यह डाक्टर का नैतिक कर्त्तव्य है।

डाक्टर लोग राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं यदि वे सभी बच्चों में आरोग्य की चेतना को भर दें। राष्ट्र के सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा होनी चाहिये तथा प्रारम्भ से ही उसका निर्माण होना चाहिए। माता पिता बच्चों को साधारण स्वास्थ्य एवं आरोग्य की बातें नहीं बता पाते। प्रत्येक शिशु को आरोग्य की शिक्षा देना डाक्टरों का पवित्र नैतिक कर्त्तव्य है।

जो डाक्टर अपने रोगियों से केवल रुपये वसूल करने में ही अपनी पूरी दिलचस्पी रखता है, जो दूसरों के कष्टों के प्रति निर्मम है, जो पीड़ितों के प्रति भी कठोरता बरतता है, जो रोगियों की अज्ञानता के कारण लाभ उठता है, जो उनकी असहायावस्था के कारण उनको अधिक रुपये देने के लिये विवश करता है, वह मनुष्य के रूप में साक्षात् पशु ही है। ऐसे पापी को बहुत ही बुरा कर्म भोगना होगा। उसको उसके लिए महान् दंड भोगना होगा। जो कष्ट तथा दुख वह रोगियों को देता उससे सौ गुने रूप में वह स्वयं भोगेगा।

वह ऐसा भान करे कि सभी ईश्वर के रूप हैं। तथा सब रूपों में वह ईश्वर की ही सेवा कर रहा है। ऐसा डाक्टर इस पृथ्वी पर ईश्वर ही है। ऐसे डाक्टर की जै हो।

—:०:—

२६. कानूनी नीति

वकील तथा बैरिस्टर के लिये भी नैतिक आचरण अत्यन्त आवश्यक है। उसे फीस के लोभ में ऐसा मामला हाथ में नहीं लेना चाहिये जिसकी सफलता में उसको स्वयं सन्देह हो।

उसे झूठे गवाहों को तैयार नहीं करना चाहिये। झूठे गवाहों को तैयार करना अपराध है। यह महान् पाप है। जो वकील इस तरह से झूठे गवाह बनाता है वह अपनी आत्मा तथा अपने अन्तःकरण का हनन करता है। इसके अतिरिक्त वह दूसरों को भी कलुषित बनाता है। उसको आध्यात्मिक मार्ग में कदापि उन्नति प्राप्त नहीं

कर सकता। वह बलपूर्वक बहस नहीं कर सकता। क्योंकि मिथ्याचरण में कभी भी शक्ति नहीं हो सकती। वह गौरव पूर्वक खड़ा नहीं हो सकता। कारण यह है कि उसमें नैतिक रीढ़ की दृढ़ता नहीं है। वह विभिन्न प्रकार की तोड़ मरोड़ अवश्य करे परन्तु उसमें सफलता निश्चित नहीं होती। सत्य ही अन्त मे विजयी होता है।

किसी मामले को हाथ में लेने के बाद यदि मुवक्किल को रुपए देने में कुछ विलम्ब भी हो जाय तो उसके लिए उसको सचाई के साथ ही काम करना चाहिए।

गरीब लोगों के मामले को उसे निःशुल्क ही हाथ में लेना चाहिये। बिना किसी प्रकार की फीस लिये ही उसको जनता के कल्याण कार्य करने चाहिये। यह उसके लिये कर्म योग है। इसके द्वारा उसका हृदय शुद्ध हो जायगा। देखिये भोला भाई देसाई ने अपने जीवन के अन्तिमक्षणों में भी जनता की भलाई के लिये किस प्रकार कार्य किया। इस तरह कार्य करके उन्होंने अपने लिए अक्षय यश को प्राप्त कर लिया है। प्रकृति ने आपको कानूनी ज्ञान प्रदान किया है। आपको चाहिए कि आप उसके गरीब बच्चों की सेवा में उस ज्ञान का सदुपयोग करें।

एक वार पण्डित मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के लोगों से भी फीस लेना चाहते थे जवाहरलाल नेहरू ने कहा "मान्य पिता, किसके लिये धन जमा कर रहे हैं?" मोती लाल जी ने कहा "तुम्हारे ही लिये क्योंकि तुम मेरे प्रिय पुत्र हो"। जवाहर लाल नेहरू ने कहा "प्रिय पिता! मैं आपकी कमाई में से एक भी पैसा नहीं लेना चाहता। मैं स्वतन्त्र रूप से अपनी जीविका निर्वाह करूंगा। कृपया

निःशुल्क ही इन मामलों को अपने हाथ में ले लीजिए। यह जनता की सेवा है।" उन्होंने कहा "जाओ उन लोगों को बुला लाओ। मैंने निर्दयता पूर्वक उन लोगों को भेज दिया है। मैं इन मामलों के लिए कोई भी फीस नहीं लूंगा।" जवाहर लाल नेहरू के शब्दों ने उनके पिता के जीवन को ही बदल डाला। अपने कानूनी व्यवसाय को त्याग कर वह सच्चे कांग्रेसी कार्य कर्त्ता बन गये।

वकील कहते हैं "बिना झूठ बोले साक्षात् रूप से अथवा असाक्षात् रूप से हम इस व्यवसाय में आगे नहीं बढ़ सकते। झूठे गवाह तैयार किये बिना हम सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।" यह भारी भूल है। जो वकील जानबूझ कर सत्य को झूठ बनाते है वे कलि पुरुष के ही दूत हैं। उनको आसुरी शक्तियों का ही सहारा है, वे शैतान के ही यन्त्र बन गये हैं। कुछ समझदार वकील जो कि कमजोर मामलों को अपने हाथ में नहीं लेते तथा वे झूठी गवाही भी तैयार नहीं करते। वे वकालत में शेर के समान हैं। उनकी सफलता दिन दूनी तथा रात को चौगुनी होती है। वे सर्वत्र ईमानदार तथा सच्चे माने जाते हैं। काफी संख्या में मुवक्किल उनके पास आते हैं। सच्चे लोग ही सदा चमकेंगे तथा सफलता को प्राप्त करेंगे। महात्मा गांधी जी की पुस्तक "एक्सपेरिमेंट्स विथ ट्रुथ" (सत्य के प्रयोग) को पढ़िये तथा देखिये कि गांधी जी अपने व्यवसाय में कितने सत्यवादी थे।

अपनी निपुण वकालत के द्वारा आपने कितने निर्दोष व्यक्तियों को जेल भेज दिया है! कितना भयानक अपराध

है ; कितना भयानक तथा अक्षम्य कृत्य ! इस पापमय कर्म के फल आपको भोगने ही होंगे। बहुत दिनों तक भविष्य में भी आपके हाथ कोई पुण्य कार्य नहीं लगेगा। आप निम्न योनियों में जन्म ग्रहण करेंगे। दूसरे जन्म में आप असाध्य बीमारियों के द्वारा पीड़ित होंगे।

क्या आपने तिरुपति के सनसनीदार मामले को नहीं सुना ? भगवान वेंकटेश स्वयं गवाह के रूप में आये। जज अपने पद से इस्तीफा देकर साधु बन गया।

रुपया लक्ष्य नहीं है। इसके द्वारा आप शाश्वत सुख को नहीं प्राप्त कर सकते। सदाचारमय जीवन बिताइये। सच्चा तथा ईमानदार बन जाइये। झूठे गवाहों को न बनाइये। गरीबों के लिये बहस कीजिये। जप, कीर्त्तन, तथा ध्यान का अभ्यास कीजिये। आप परम मोक्ष तथा अमरानन्द के धाम को प्राप्त कर सकते हैं।

असत्य, धोखा तथा संकीर्णता में मनुष्य इतना डूबा हुआ है कि वह समझ तक नहीं पाता कि वह समाज को कितनी गहरी हानि पहुँचा रहा है। कानून का अभिप्राय है सत्य का पोषण करना तथा न्याय करना। परन्तु इस व्यवसाय में अनैतिकता का होना तो न्याय तथा धर्म की जड़ को ही खोद कर रख देना है। जहां सत्य की स्थापना होनी चाहिये वहां पर केवल झूठ को ही प्रशस्ति मिल रही है।

ईश्वर सभी वकीलों को सन्मति दे। जिससे कि वे धर्म संस्थापना तथा न्याय के द्वारा मुक्ति-पथ पर अग्रसर हो सकें।

३०. औद्योगिक नीति

समय बहुत बदल गया है। समाज वैसा न रहा जैसा वह सैकड़ों वर्ष के पहले था। मानव जाति ने नये नये क्षेत्रों में उन्नति प्राप्त की है। ये क्षेत्र प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में नहीं थे। बड़े पैमाने पर उद्योग तथा फैक्टरी सिस्टम अब सर्वत्र है। अतः इन सामाजिक परिस्थितियों में विशेष नैतिक नियमों की आवश्यकता है।

औद्योगिक व्यक्ति अधिक यंत्र बुद्धि रखने लगता है। वह मजदूरों के दल को स्वयं चालित मशीन ही समझने लग जाता है। उसको श्रमिकों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रह जाती। यह गलत है। यह उसका नैतिक कर्त्तव्य है कि वह उनकी भलाई के प्रति ध्यान रखे क्योंकि उनके श्रम पर ही उसकी सम्पत्ति निर्भर है।

साधारणतः बड़े पैमाने पर होने वाले उद्योगों में गरीब लोग ही अधिक काम करते हैं। अपने प्राण धारण करने के लिये उनको काम करना ही होता है। मालिक को यह नहीं चाहिये कि वह उनकी दयनीय स्थिति से अनुचित लाभ उठा कर उनसे अधिक श्रम ले। वह उनको उचित वेतन दे तथा उनको सुविधायें प्रदान करे जिससे कि वह हड़ताल अथवा प्रदर्शनों आदि के लिये बाध्य न हों। श्रम की निर्मम लूट नैतिक नियम का उल्लंघन है।

औद्योगिक सम्बन्ध ठेके पर आधारित हैं। उद्योग का क्षेत्र कितना भी लौकिक क्यों न हो परन्तु फिर भी मनुष्य तथा मनुष्य के बीच का ठेका पवित्र है। इस ठेके पर

सदा ध्यान रखना चाहिये। तभी धर्म का पालन हो सकेगा। मजदूरों का भी कर्त्तव्य है कि वह इस ठेके का आदर करें। अपने मालिक के लिये यथाशक्ति हित का कार्य करें। यह सम्बन्ध रुपयों के आदान प्रदान पर निर्भर नहीं है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रूर, प्रतिद्वंद्विता—ये आधुनिक उद्योग के लिये अभिशाप हैं। यह आसुरी तथा अनैतिक है। बड़े बड़े औद्योगिक सहयोग के लिये नहीं मिलते। परन्तु छोटे छोटे उद्योगों को कुचलने तथा नष्ट करने के लिये मिला करते हैं। यह अनैतिक है। बहुमूल्य कच्चे माल को जान बूझकर नष्ट किया जाता है जिससे कि कृत्रिम मांग का निर्माण हो। यह नैतिकता के प्रति महान् अपराध है। अधर्म के इन स्तम्भों पर आधारित होने के कारण ही सभ्यता का इतना ह्रास हो रहा है।

लोभ तथा काम—ये ही औद्योगिक अनैतिकता के कारण हैं। लाभ के लिये अतृप्त तृष्णा होने के कारण मनुष्य सभी वर्गों का निरादर करने लग जाता है। मनुष्य पूरी तरह से अधर्मी बन जाता है। अतः लोभ का त्याग कीजिये। धन की कामना न कीजिये। ऐसा जानिए कि ईश्वर ने आपको औद्योगिक कला प्रदान की है, आपको अर्थशक्ति दी है तथा संगठन शक्ति दी है जिनसे कि आप मानव जाति का कल्याण करें। आपमें धन तथा विशेष गुणों की पुंजी है। सर्व प्रथम सार्वजनिक कल्याण के लिये इनका सदुपयोग कीजिये। पुनः अपनी सम्पत्ति की वृद्धि कीजिये।

आधुनिक युग के औद्योगिक अपनी इस अधार्मिक प्रवृत्ति को समझें तथा उन्नति एवं मानव जाति के कल्याण

में सहायक बनें। वे नैतिक नियमों का पालन करें तथा भौतिक लाभ के साथ सच्चा सुख तथा शांति को भी प्राप्त करें।

—:•:—

३१. अन्तर्राष्ट्रीय नीति

जिस तरह समाज के लिये समाज नीति है उसी तरह शान्ति की स्थापना करने के लिये संसार के राष्ट्रों के बीच राष्ट्रीय नीति है। अन्तर्राष्ट्रीय नीति के पालन के द्वारा ही संसार के राष्ट्र उन्नति कर सकते हैं। यदि राष्ट्र इन अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों का पालन करें तथा संसार में कदापि संग्राम न हो।

शक्ति, साम्राज्य, आत्म प्रतिष्ठा की कामना राष्ट्रों को वशीभूत कर लेती है। उनकी समझ तथा नैतिक क्षमता मारी जाती है। यही कारण है कि वह नैतिक सिद्धांतों का खण्डन करते हैं।

समाज में एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ संबन्ध के लिये जो नैतिक नियम हैं वे ही राष्ट्र तथा राष्ट्र के साथ सम्बन्ध में भी लागू हैं। आज कल अन्तर्राष्ट्रीय नीति की परमावश्यकता है। विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रों के नेता इस आवश्यकता को अब महसूस करने लगे हैं। एक विश्व संघ (फेडरेशन) स्थापित करना चाहिये। तभी अन्तर्राष्ट्रीय नीति को व्यवहार में लाया जा सकता है। सुसंगठित विश्व संघ राष्ट्रों के बीच की लड़ाइयों को रोककर जगत में शांति की सुरक्षा कर सकता है।

परन्तु ऐसी संस्था भी तभी काम कर सकती है जब कि उसके सदस्य उदार हों। उनके आचार शुद्ध तथा विचार उन्नत हों। उनमें सहनशीलता, विश्व बन्धुत्व तथा सहयोग की कामना होनी चहिये। उनमें संकीर्ण साम्प्रदायिकता न हो कर विस्तृत सार्वभौमिकता होनी चाहिये। यदि नहीं तो यह संस्था भी संयुक्त राष्ट्र संघ, यू० एन० ओ० की तरह ही असफल रहेगी।

विज्ञान की प्रगति के साथ देश तथा काल की दूरी भी कम हो चली है। कुछ ही घंटों में आप लन्दन या न्यूयार्क जा सकते हैं। रेलवे, हवाई जहाज, रेडियो, टेलिविजन आदि ने समस्त विश्व को एक बना दिया है। आज सम्पूर्ण जगत पूर्णतः एक ही हो चला है। देश तथा राष्ट्र अब एक दूसरे पर अवलंबित हैं। एक देश की आर्थिक स्थिति यदि खराब हुई तो इसकी प्रतिक्रिया सभी देशों पर पड़ती है। यदि एक राष्ट्र कष्ट भोगता है तो इससे अन्य राष्ट्रों को भी कष्ट भोगना पड़ता है। जिस तरह गठिया रोग से पीड़ित घुटनों के कारण मन तथा शरीर भी प्रभावित होते हैं उसी प्रकार एक देश के कष्ट से अन्य देश भी कष्टपीड़ित हो जाते हैं। कोई भी राष्ट्र या देश संस्कृति तथा सभ्यता तब तक भी उन्नति नहीं कर सकता जिस समय तक कि अन्य राष्ट्रों को भी ऊंचा न उठाय जाय।

यद्यपि जगत में एक प्रकार की एकता है फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय नैतिक उन्नति नहीं हो पाई है। राष्ट्रों के बीच न्याय, प्रेम, तथा सद्व्यवहार नहीं। मनुष्य बन्धुत्व की भावना को भूल चुके हैं। जानवरों के लिये जो नियम है

"जिसकी लाठी उसकी भैंस" वही आज की अन्तर्राष्ट्रीय नीति में भी लागू हो रहा है।

जिनके पास अधिक परमाणु बम हैं वे ही आज जगत के शासक बने हैं। वे तिजारत तथा व्यवसाय में भी अधिक सुविधा को प्राप्त कर सकते हैं। वे विशाल राज्यों को अधिकृत कर सकते हैं। वे निर्बलों पर अत्याचार कर उनको गुलाम बना सकते हैं। यही युद्ध तथा नैतिक पतन का कारण है।

सभी राष्ट्रों को समान सुविधायें मिलनी चाहियें। हर राष्ट्र को समान अधिकार मिलने चाहियें। किसी राष्ट्र विशेष का अधिकार न होना चाहिये। किसी भी वस्तु अथवा मामले में किसी राष्ट्र को पूर्ण अधिकार तथा आधिपत्य न मिलना चाहिये। समुद्र, वायु, भूमि—ये सभी राष्ट्रों के लिये उसी प्रकार समान रूप से सम्पत्ति हैं जिस प्रकार सूर्य की रोशनी, हवा तथा पानी, आदि हमारी सार्वजनिक सम्पत्ति हैं। अतः हम सभी भाई भाई हैं।

रीष्ट्रीयता के सम्बन्ध में गलत धारणा, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, सैनिकवाद—ये अन्तर्राष्ट्रीय नीति में बाधा हैं। साम्राज्यवाद तथा सैनिकवाद का अन्त होना चाहिये। मानववाद, विश्वकल्याण तथा वेदान्तवाद को इनका स्थान ग्रहण करना चाहिये। तभी जगत में शाश्वत शांति की स्थापना हो सकती है। राष्ट्रपति तथा अधिनायकों को को भारत आकर वेदान्त का अध्ययन करना चाहिये। उन्हें वेदान्त को अपने व्यवहार में लाना चाहिये।

वेदान्त तथा वेदान्त वाद की शिक्षा जगत के सारे कालेजों तथा स्कूलों में अनिवार्यतः मिलनी चाहिये। सभी इसको ठीक ठीक समझें तथा सदा व्यवहार में लावें। इसी से शान्ति, एकता, सन्मति, समता, बन्धुत्व की स्थापना हो सकेगी। इसी के द्वारा परमाणु बम तथा मशीनगनों के निर्माण का अन्त हो सकता है।

—:o:—

पंचम अध्याय

साधुओं तथा संन्यासियों के क्लब

३२. संन्यासी तथा समाज सेवा

हर एक छात्रावास में साधुओं तथा संन्यासियों को सदा रहने के लिये आमंत्रित करना चाहिये। साधु प्रतिदिन विद्यार्थियों को सदाचार तथा आत्मोन्नति के पाठों को दे। साथ ही साथ उनको ध्यान तथा उपासना के व्यावहारिक शिक्षण भी प्रदान करे। वह उनको भगवद्गीता, रामायण, भागवत तथा उपनिषदों का ज्ञान प्रदान करे। तभी वे समुचित रूप से ढाले जा सकते हैं तथा उनके आचरण शुद्ध हो सकेंगे। आज के विद्यार्थियों की दशा दयनीय है। वे ईश्वर तथा धार्मिक ग्रन्थों के प्रति अपनी श्रद्धा को खो चुके हैं। वे अधार्मिक बन गये हैं। शिक्षण संस्थाओं को चलाने वाली कार्यकारिणी सभाओं के प्रधान जनों को चाहिये कि वे संन्यासियों के साथ अपना सम्पर्क स्थापित करें तथा अपनी संस्थाओं में धार्मिक उपदेशक संन्यासियों को रखकर अपनी संतति को आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने का सुअवसर प्रदान करें।

सप्ताह में एक बार अवश्य साधु अथवा संन्यासी को सरकारी जेल में पधारने के लिये आमन्त्रित करना चाहिये। ये कैदियों के द्वारा कीर्त्तन तथा प्रार्थना करायेंगे तथा नैतिक उपदेशों के द्वारा उनको अच्छी आत्माओं में परिणत करेंगे। अज्ञान के कारण ही लोग चोरी तथा अन्य अपराध करते हैं। यदि उचित शिक्षा दी जाय तथा उनके अज्ञान को दूर कर दिया जाय तो न अपराध ही रहेंगे और न कारावास ही। निश्चय ही तब इस पृथ्वी पर स्वर्ग का साम्राज्य हो जायगा। क्या इस ओर मुक्त कैदी समिति अथवा अन्य संस्थायें ध्यान न देंगी?

यदि कोई संन्यासी उस शहर में रहता है जहां पर कि अस्पताल है तो उसे नित्यप्रति रोगियों से मिलने तथा उनमें उत्साह भरने का सुअवसर देना चाहिये। वह उनकी शीघ्र रोग मुक्ति के लिये प्रार्थना करेंगे तथा उनसे भी भजन, कीर्त्तन तथा ध्यान आदि करायेंगे। साथ ही साथ उनको आत्मा के अनामय तथा अमर स्वरूप का ज्ञान देंगे जो उनके शरीरों का अन्तर्वासी है।

यदि उपर्युक्त सम्मतियों को कार्यान्वित किया जाय तो बहुत अच्छी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। आध्यात्मिक उन्नति होना आज की दुनियां के लिये अत्यन्त आवश्यक है। यदि उचित अवसर दिया जाया तो निष्काम्य सेवा करने के लिये शिक्षित संन्यासियों का समुदाय अपने कुटीरों से बाहर आकर इस व्यस्त दुनियां में प्रवेश करेंगे। सामाजिक कल्याण में ऐसी भद्र संस्थाओं की महत्ता कितनी है!— इससे संसार को अवगत होना चाहिये।

३३. संन्यासियों के लिये कर्त्तव्य

समाज के रूप में संन्यासियों तथा साधुओं के लिये एक सार्वभौमिक कर्त्तव्य है जिसकी पूर्ति के लिये ही उनका अस्तित्व है । वे इस भूमि की आध्यात्मिकता के संरक्षक हैं। मानवता की प्रगति तथा पूर्णता में उनका महत्वपूर्ण हाथ है। इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही उनका अस्तित्व है। इसीलिये संन्यासी लोग संसार से अपने को अलग रखते हैं। इसीलिये वे लोग संयम में कुशल होते हैं। परन्तु अभाग्यवश हम लोगों ने पार्थक्य को स्थाई बना डाला है तथा बहुत हद तक साधुसमाज अपने को अन्य मानव जाति से अलग मानता हुआ संघर्षात्मक जीवन यापन करता है।

दूसरों के साथ अपना संपर्क हटा लेने के कारण वह अपना कर्त्तव्य भी भूल चुके हैं। अन्य तीन आश्रमों के लिये प्रेरक तथा उपदेशक बनने का जो उनका पवित्र कर्त्तव्य है, उसी की वे लोग अब अवहेलना करने लगे हैं। हम संन्यासियों को एक बार फिर बद्ध परिकर होकर राष्ट्रीय जीवन में अपने निर्धारित कार्य को पूरा करना चाहिये। हमको संगठित होकर एक संस्था के रूप में परिणत होना चाहिये। इस संस्था का आदर्श है रुधिर एवं संघर्ष में चिरकाल से सने हुये इस संसार में भ्रातृत्व एवं शान्ति के नवयुग के आवाहनार्थ निस्वार्थ रूप से पूरे हृदय से संलग्न होना।

नई दुनियां के पुनर्निमाण-कार्य में मानव-जाति के हर भाग को अपना अपना हाथ बंटाना है। यदि नई सभ्यता को स्थाई बनाना है (महत्तर युगों की प्रस्तावना

के रूप में लाना है) तो उसको आध्यात्मिक तत्वों के शाश्वत मूल्य पर आधारित होना होगा। नई मानवता के लिये भौतिक आध्यात्मिक आधार को प्रस्तुत करने का कार्य संसार के साधुओं तथा संन्यासियों का है।

आने वाली संतति को आध्यात्मिक बनाने का उत्तर-दायित्व साधुओं तथा संन्यासियों का है। यह उन पर ही पूरी तरह निर्भर करता है। इस भूमि की महिमामय परंपरा को बनाये रखने के लिये तथा समाजोपकारी संस्थाओं के रूप में अपने सम्मान्य स्थान को कायम रखने के लिये उनको ऐसा करना है।

नैतिक तथा आध्यात्मिक मामलों में पथ-प्रदर्शन के लिये सामान्य जनता सदा से ही साधुओं तथा संन्या-सियों का मुँह ताकती आई है। अतः हमको आदर्श जीवन के द्वारा अपने कार्य में संलग्न होना है। देश के सारे साधुओं को संगठित संस्था के रूप में लाने के लिये सबों को पूरे उत्साह के साथ कार्य करना चाहिये। तभी हमको इसमें पूरी सफलता मिल सकती है। महत्तर कार्य जो कि हम लोगों के सामने है उसको दृष्टि में रखते हुये भारतवर्ष के सारे पुण्य स्थानों में हम साधुओं को सर्व-शक्तिमान प्रभु में पूरी श्रद्धा रखकर पूरी सचाई के साथ इस कार्य को आरम्भ करना चाहिये।

संसार के साधुओं तथा महात्माओं के वृहत् संगठन की ओर यह संगठन प्रारम्भिक तैयारी के रूप में होगा। एक बार पुनः भारत को राजा भरत के पुनीत भारतवर्ष के रूप में परिणत करना होगा। तब भारत माता केवल सिद्धान्ततः ही सारे जगत की जननी नहीं बनेगी वरन्

यथार्थतः वह सारे जगत की जननी होगी। इस ईश्वरीय कार्य में सफल होने का एकमेव साधन है—निष्काम्य संगठन।

इस संगठन का प्रारम्भिक कार्य होना चाहिये अपने को उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये योग्य सक्षम एवं अधिकारी बनाना। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सर्व-प्रथम संघ की एकत्र संस्था का हिसाब ले लेना होगा। जिस प्रकार महाभारत से पहले सेनाओं की संख्या ली गई थी उसी प्रकार हमको भी अपनी शक्ति का हिसाब रखना होगा क्योंकि हम सत्व तथा शुभ शक्ति के द्योतक हैं। इस सत्व तथा शुभ का काम है संसार को आसुरी शक्तियों से मुक्त करना तथा रखना।

—:०:—

३४. साधुओं एवं संन्यासियों के सम्मेलन

साधु तथा संन्यासी जगत विधान के केन्द्र हैं। वे ही सबसे उपयुक्त अधिकारी हैं जो कि विश्व शान्ति तथा समता को रख सकें। वे ही वास्तविक निमित्त हैं जिनके द्वारा आक्रमणकारी राष्ट्रों को एकता के सूत्र में सम्बद्ध किया जा सकता है। वास्तविक साधु तथा संन्यासी, जिसका लक्ष्य विश्व बन्धुत्व है, अपने जीवन के सभी स्तरों में महान् अनुभवों से होकर गुजरते हैं। साधु अथवा संन्यासी का जीवन सबसे अधिक कष्टकर होता है। यह दोनों ओर धार रखने वाली तलवार के समान है। यदि साधु पूर्णतः सदाचारमय तथा शुद्ध जीवन नहीं बिताता है तो वह भ्रष्ट हो जाता है।

आजकल हम ऐसे लोगों को पाते हैं जो कि गैरिक वस्त्र धारण कर साधु बनने का स्वांग भरते हैं। परन्तु अपने दुराचरण के कारण समस्त संन्यासी जगत पर लांच्छन लगाते हैं। ये शाश्वत तथा शास्त्र निर्धारित नियमों की नितान्त अवहेलना करते हैं। संसार के लोग उनकी उग्र आलोचना करते हैं। इस तरह लोग फिर समस्त संन्यासियों की निन्दा करते हैं।

ऐसे स्वांगों तथा कुकृत्यों को रोकने के लिये साधु-संन्यासियों को मानव-जाति के उपदेशक के रूप में लाने के लिये तथा उनके गत सम्मान को पूर्ववत् बनाने के लिये योग्य संस्थाओं के रूप में इन साधुओं तथा संन्यासियों का संगठित होना अत्यन्त आवश्यक है।

समस्त संसार के कल्याण के लिये सच्चे संन्यासियों तथा साधुओं का पालन तथा अनुशासन अत्यन्त ही आवश्यक है।

ऐसे अधिवेशन, सम्मेलन, सभा इत्यादि को हिन्दू धर्म के ही साधुओं एवं संन्यासियों में ही सीमित नहीं रहने चाहिये वरन् संसार के सभी धर्मों—ईसाई, इस्लाम, सिक्ख धर्म के प्रचारकों, फकीरों तथा साधुओं को भी शामिल करना चाहिये। सारे धर्मों का मूल एक ही है। सारे धर्मों का मौलिक अधिष्ठान तथा मौलिक उद्देश्य एक ही है। जिन लोगों ने संसार की आसक्तियों का त्याग किया है तथा सनातन सत्य की खोज में अपने जीवन को अर्पित किया है उनके व्यवहार में विभेद नहीं होना चाहिये।

संसार के सभी स्थान के साधुओं में पूर्ण संगठन से साधु समाज को लाभ होगा। इस तरह समस्त संसार की

उन्नति हो सकती है। मठ, चर्च अन्य धार्मिक संस्थायें तथा उनके प्रधानों में भी मेल होना संभव है। सब धर्मों के प्रधानों को एक दूसरे के साथ हाथ मिला कर चलना होगा। उनको इस संगठन के कार्य-व्यापार में ठोस सम्मतियां प्रदान करनी होंगी।

---

३५. साधुओं तथा भिक्षुओं का ऐक्ट

साधुओं तथा संन्यासियों को अपराधियों, लुटेरों आदि की श्रेणी में रखकर उनको अनुत्पादक तथा बेकार कहना अनुचित है। यदि सरकार साधुओं को पहले जैसा सम्मान्य स्थान नहीं देना चाहती तो कम से कम उसको साधुओं तथा संन्यासियों को एक पृथक वर्ग अवश्य मानना चाहिये जो कि आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा विश्व कल्याण के कार्य व्यापारों में संलग्न है।

इस देश में ब्राह्मण जाति के कर्मों के विलुप्त हो जाने पर (क्योंकि ब्राह्मण लड़के नौकरी के पीछे हैं) आधुनिक संन्यासियों का यह कर्त्तव्य हो गया है कि अपने संन्यास एवं त्याग के साथ साथ स्वाध्याय, प्रवचन आदि ब्राह्मण धर्म को भी निभायें। इस प्रकार आज वे राष्ट्र की भित्ति बन बैठे हैं।

संन्यासी-जन अपने अनोखे तरीके से स्वनिर्धारित दरिद्रतामय जीवन के द्वारा भिक्षा पर जीवन निर्वाह करते हुये इस भूमि की प्राचीन संस्कृति को बनाकर रखे हुये हैं। वे समस्त संसार की आंखों में भारत की महिमा को

वढ़ोत्तरी दे रहे हैं। उनके साथ मात्र भिखारी जैसा व्यवहार नहीं होना चाहिये। उनको भिक्षुओं के ऐक्ट के अन्दर नहीं लाना चाहिये। हां, मैं सरकार की इस कठिनाई को समझता हूँ कि वास्तविक साधु तथा संन्यासियों को पाखंडियों से जो कि साधुओं के वेश में घूमते हैं किस प्रकार पृथक् किया जाव।

इसके लिये सरकार को चाहिये कि वह साधुओं तथा संन्यासियों को एक पृथक वर्ग के रूप में करार देकर भिक्षुओं के ऐक्ट से उनको मुक्त कर दे। साधुओं एवं संन्यासियों से निवेदन करना चाहिये वे अपने साथ एक प्रमाण-पत्र रखें जो कि इस बात का निर्देश करे कि वे स्वीकृत मठ तथा संस्था के द्वारा रजिस्टर्ड हैं। साधुओं के प्रतिनिधियों की एक केन्द्रीय संस्था का निर्माण होना चाहिये। जिन व्यक्तियों को इस तरह के प्रमाण पत्र दिये गये हों उनके विशेष परिचय का रेकार्ड (१) प्रान्तीय अथवा राज्य सरकार के पास (२) भारत सरकार के तथा (३) केन्द्रीय साधु समाज के पास रहना चाहिये। स्वीकृत संस्थाओं के द्वारा जो साधु रजिस्टर किए गए हैं, उन्हें देश की प्रान्तीय सरकार तथा केन्द्रीय सरकार को भी साधु अथवा संन्यासी के रूप में स्वीकार करना चाहिए। फिर भी कुछ विरक्त तथा संन्यासी ऐसे हों जो कि इस प्रकार के प्रमाण पत्रों की कोई आवश्यकता न रखते हों। परन्तु साथ ही साथ वे विरक्त लोग इस बात की परवाह नहीं करते कि उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जा रहा है।

स्वीकृत आध्यात्मिक संस्थाओं के सदस्यों के द्वारा एक सलाहकार समिति का निर्माण करना चाहिये।

सरकार से निवेदन है कि धार्मिक-ट्रस्ट-बिल अथवा इस किस्म के अन्य विधेयकों के लागू करने के मामलों में वह समिति की सलाह को माने। ज्ञानी तथा धुरन्धर धार्मिक नेताओं के द्वारा बनी हुइ यह समिति सभ्यों के लिये तथा कार्यवाही अमलदारों के लिये किसी मामले के उचित अध्ययन में बहुत लाभप्रद सिद्ध होगी। धर्म शास्त्रों के निष्णात शिक्षित संन्यासी जन ऐसे मामलों को ठीक निष्पक्ष एवं अचूक विचार प्रदान करने में सबसे अधिक योग्य तथा समर्थ होंगे।

आधुनिक सरकार का रुख पूर्णतः विध्वंसात्मक तथा अनुचित नहीं कहा जा सकता। परन्तु हमको चाहिये कि हम उसको वरदान के रूप में समझें और इस स्वर्णिम योग से लाभ उठाकर अपने घर को व्यवस्थित बनाने में प्रयत्नशील हो जाना चाहिये। यह ठीक है कि हाल में साधुओं तथा संन्यासियों का स्तर बहुत नीचे जा गिरा है। अपने प्रति तथा समस्त जनता के प्रति हमारा कर्त्तव्य है कि सरकार से साधुओं तथा संन्यासियों के विशेष वर्ग की स्वीकृति की मांग करते हुये हम सच्चे एवं रचनात्मक प्रयास में लग जायं जिससे कि भारतीय साधुओं का स्तर पुनः ऊँचा उठ जाय। साधु को संन्यास, शुद्धता, ज्ञान तथा सेवा का आदर्श बनना चाहिये। उपर्युक्त केन्द्रीय साधु समाज को साधुओं तथा संन्यासियों के स्तर को उठाने के लिये पर्याप्त साधन तथा प्रेरणा प्रस्तुत करनी होगी। यह बहुत ही वास्तविक आवश्यकता है। इस कार्य को अविलंब कार्यान्वित करना चाहिये।

—:०:—

३६. साधुओं के क्लब

आप तीर्थ स्थानों में इन क्लबों को पायेंगे। कुछ इने गिने लोग ही शुद्ध निवृत्ति मार्ग पर चल सकते हैं। चौबीस घंटे अध्ययन तथा ध्यान करना सम्भव नहीं है। साधुओं के लिये भी कुछ कर्म चाहिये। नये युवक साधुओं को कुछ सेवा करनी चाहिये। अन्यथा वे शीघ्र ही तामसिक बन जायेंगे। निष्काम्य कर्म मनुष्य को कभी भी बन्धन में नहीं बांधता। श्री शंकराचार्य जी ने भी सकाम कर्म का ही विरोध किया है। कुछ साधुओं ने भी श्री शंकर के उपदेशों को ठीक से समझा नहीं है। कुछ साधु लोग एक या दो घंटे के लिये जप या ध्यान कर लेते हैं तथा बाकी समय बीतता है गपशप में। वे अखबार पढ़ते हैं। सायं सत्संग के नाम पर वे एक साथ बैठते हैं। तथा सब प्रकार की अटरम-सटरम बातें करते हैं। कभी-कभी वे क्षेत्र की रोटी तथा दाल के विषय में बात करने लगते हैं। "उस क्षेत्र की रोटी अच्छी नहीं है" तथा कभी-कभी वे कहेंगे "वह स्वामी अच्छा आदमी नहीं है।" कभी-कभी राजनीति की बातें अथवा कभी रेडियो और भंडारे की बातें।

इन क्लबों को उठा देना चाहिये। भारत साधु समाज को इस विषय में ध्यान देना चाहिये।

—:०:—

३७. साधुओं का सुधार

यह बहुत ही आवश्यक है।

सारे साधु तथा संन्यासियों को संगठित होना चाहिये

सारे क्षेत्रों को भी संगठित होना चाहिये।
गुण्डा तत्वों को शिक्षा मिलनी चाहिये।
सच्चे साधुओं की देखरेख होनी चाहिये।
लड़कों को संन्यास नहीं देना चाहिये।
साधुओं को असाधुओं से अलग करना कठिन है।
साधु-थर्मामीटर कहीं नहीं हैं,
जिससे कि साधु असाधु की जांच हो सके।
विद्वान व्यक्ति साधु हो सकता है।
निरक्षर व्यक्ति भी साधु हो सकता है।
युवा मनुष्य साधु हो सकता है।
वृद्ध मनुष्य साधु हो सकता है।
साधु समिति इसका पता नहीं लगा सकती।
निरक्षर साधुओं को साक्षर बनाना चाहिये।
संस्कृत विद्यालय खुलने चाहियें।

कुछ लोगों को हठयोग क्रिया की शिक्षा मिलनी चाहिये।

कुछ को आयुर्वेद प्रशिक्षण मिलना चाहिये।

कुछ योग तथा वेदान्त में अनुसन्धान करें।

वे अपने अनुभवों के द्वारा लोक तथा परलोक का कल्याण करें।

वे पूर्ण समय साधक बन सकते हैं।

वे शुद्ध ध्यान योगी रहेंगे।

कुछ लोगों को शिक्षा के उपरांत प्रचार कार्य में भेजना चाहिये।

—:०:—

३८. साधुओं का संगठन

यह समय की मांग है। यदि साधुओं तथा संन्यासियों का पूर्ण संगठन हो जाय तो इससे बहुत लाभ होगा। आप नया युग, नयी संस्कृति का निर्माण कर सकेंगे।

संगठन के लिये तो सभी पुकार रहे हैं। भारत का हर एक गृहस्थ इसकी बात करता है पर हम संगठन करें कैसे ? यही समस्या है। यही प्रश्न है।

साधुओं का समाज जटिल तथा विषम सम्प्रदायों के द्वारा बना है। इसमें बहुत से पन्थ तथा सम्प्रदाय हैं। जैसे—वैरागी, कबीर पन्थ, दादू पन्थ, गोरखनाथ संप्रदाय, निर्मल, उदासी, दसनाम संन्यासी जो शंकर के अनुयायी हैं, श्री रामकृष्ण मिशन के संन्यासी, निरंजन अखाड़ा संन्यासी, नागा आदि।

ऋषिकेश साधुओं तथा संन्यासियों का घर है। गंगा के किनारे इस चित्ताकर्षक मनोरम स्थल को साधुओं ने तपश्चर्या तथा ध्यान के लिये चुना है। आध्यात्मिक स्पन्दनों से यह स्थल पूर्ण है। प्राचीन ऋषिमों ने इस स्थल, पर रहकर तपस्या की है। हिमालय में उत्तरकाशी तथा हरिद्वार आदि केन्द्र हैं जहां बहुत से संन्यासी रहते हैं। यहां पर दो मुख्य क्षेत्र हैं जो कि साधुओं को मुफ्त भोजन देते हैं। जहां कहीं भी भोजन की मुफ्त व्यवस्था हो वहां सभी प्रकार के लोग संन्यासी-रंगीन-वस्त्र पहन कर आ जुटते हैं। इस प्रकार सामाजिक बुराई घुस जाती है तथा लोगों की पवित्रता बिगड़ जाती है। उपद्रवी लोग इन पवित्र स्थानों में आकर रहने लगते हैं। वे अपने उपद्रव कार्यों को जोरों के साथ करने लग जाते हैं।

साधु सम्प्रदाय के प्रधानों में संगठन के लिये काफी उत्सुकता होनी चाहिये। तभी यह काम सुचारु रूपेण चल सकता है। उन्हें एक साथ बैठकर मतभेद मिटाकर पूरे हृदय के साथ यह कार्य करना चाहिये। यह बहुत ही कठिन काम है। पूर्ण संगठन लाने में काफी समय लग जायेगा।

सारे मण्डलेश्वर, मठों के प्रधान, धार्मिक संस्थाओं के प्रधान, सभी ख्याति प्राप्त संन्यासी तथा साधुओं को इस कार्य के लिये आगे बढ़ना चाहिये। कोई भी संन्यासी अकेला इस कार्य को नहीं कर सकता। श्री शंकर को राजाओं की सहायता तथा उनका सहयोग प्राप्त था। उन्होंने अपने प्रचार कार्य के लिये नागों की सेना बनाई थी। अतः इस कार्य के लिये भी मनुष्य-शक्ति, अर्थ शक्ति, तथा स्वयं सेवकों की सेना की आवश्यकता है।

आज संन्यासियों के भीतर बहुत से पाशवी तत्व रंगीन वस्त्र में घुस आये हैं। उनको निर्मलता पूर्वक अलग करना होगा। वे बहुत उपद्रव करते हैं। संगठनों को इन लोगों के द्वारा बहुत सी बाधायें प्राप्त होंगी। उनको इस विरोध का सामना करने के लिये सदा तैयार रहना चाहिये। केवल जोरदार भाषणों के द्वारा ही साधुओं का संगठन नहीं हो सकता। हमें मजबूत, अथक काम करने वाले, बुद्धिमान निष्काम्य सेवकों की आवश्यकता है। हमें उदार हृदय सज्जनों की भी सहायता चाहिये। तभी हम इस कार्य में सफल हो सकते हैं।

अब समय आ गया है। इस कार्य को शीघ्र ही हाथ में ले लेना चाहिये। सारे धार्मिक प्रधान सहायता करें।

तभी सुचारु रूपेण लोक संग्रह किया जा सकेगा। तभी हम इस जगत में वास्तविक धार्मिक क्रांति ला सकते हैं।

—:o:—

३६. जाग्रत भारत में साधुओं का कर्त्तव्य

मैं इससे पूर्णतः सहमत हूँ कि जो लोग विपत्ति के कारण संसार का संन्यास कर साधुवेश धारण कर लेते हैं, परन्तु जिनमें सच्ची विरक्ति नहीं, उन्हें मानव जाति की कुछ सेवा अवश्य करनी चाहिये। परन्तु जो साधक सच्चे हैं उन्हें उनकी साधना (जप, ध्यान, स्वाध्याय यथा तप) में ही प्रोत्साहित करना चाहिये। उन्हें ऐसे कार्यों में नहीं लगाना चाहिये जिनका उनकी साधना से सीधा सम्बन्ध न हो। श्री सम्पूर्णानन्द जी ने मेरे पास एक पत्र लिखा था जिससे मुझे ज्ञात हुआ कि अधिकांश भारतीय जनता में यह दृढ़ भावना है कि साधु में साधारण जनता की अपेक्षा कुछ विशेषता होनी चाहिये, साधु में जनता को ईश्वरीय मार्ग में शिक्षित करने की योग्यता होनी चाहिये, उसे आध्यात्मिक साक्षात्कार की कला जाननी चाहिये। वह केवल समाज सेवा से ही विदित न हो। इसके द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत की प्राचीन संस्कृति इस भूमि से अदृश्य नहीं हुई है। सच्चे साधु अथवा सच्चे मुमुक्षु को सदा समाज सेवा के लिये बाध्य करना हमारी प्राचीन संस्कृति को नष्ट करना ही है। समाज सेवक, साधु, यदि वह महात्मा जी जैसे बहुत उन्नत आत्मा न हों तो वह शीघ्र ही जनता के सम्मान का भाजन नहीं रहेगा तथा संन्यास की महिमा खो जायगी।

हमेशा साधारण जनता के साथ रहते रहते साधक अपने मार्ग से च्युत भी हो सकता है। साधकों के लिये मेरी समझ में ऐसा सेवा-कार्य होना चाहिये जो कि मानसिक, नैतिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक हो—वे अध्यात्म ज्ञान का प्रचार करें। लोगों में जप, कीर्त्तन आदि के द्वारा चेतना जाग्रत करें तथा सिद्धांत और अपने जीवन के उदाहरण द्वारा उनको नैतिक जीवन के लिये प्रवृत्त करें। रोगी की सेवा, गरीब की सेवा तथा जनता की हर प्रकार की सेवा का स्थान अवश्य ही साधक की दिनचर्या में रहेगा। परन्तु वह अपना सारा समय इसी में नहीं बितायेगा। बहुत से उदार सज्जन तो इस कार्य की देख-भाल कर ही रहे हैं। संन्यासी का मुख्य कर्त्तव्य है मनुष्य की बुद्धि तथा आत्मा की सेवा करना।

अधूरे साधकों के विषय में भी, जो संसार का सामना करने में असमर्थ होने पर संन्यास ग्रहण कर लेते हैं, मेरा विचार यह है कि हर प्रकार के प्रयास के द्वारा उनको इस तरह ढाला जाना चाहिये कि कालांतर में वे साधु बन जायं। उनके लिये भी उपर्युक्त विधि का ही अनुसरण किया जाना चाहिये। उन्हें आध्यात्मिक साधक, आध्यात्मिक प्रचारक तथा वास्तविक साधु के रूप में प्रशिक्षित करना चाहिये। हां ऐसे लोगों की साधना में समाज-सेवा को कुछ समय तक काफी स्थान रहेगा। इनके लिये भी एकांत का बहुत महत्व है।

दम्भियों तथा दुष्टों का तो दूसरा ही मामला है। वे कुछ समय के लिये साधु वेश में घूम सकते हैं परन्तु प्रकृति शीघ्र उन्हें प्रकट कर देती है। उनको दूर करने

के लिये सभी साधुओं तथा संन्यासियों के लिये बहुत आवश्यक है कि वे अपने नाम किसी सुव्यवस्थित साधु संस्था में दर्ज करवा लें। हां इसमें शत प्रतिशत सफलता तो नहीं मिल सकती। सभी श्रेणियों के लोगों में भले तथा बुरे लोग मिलते रहते हैं।

सच्चा साधु, जो लोगों की बुद्धि तथा आत्मा की सेवा करता है, वह मानव जाति के लिये बड़ी सेवा कर रहा है। वह उनको शाश्वत मूल्य की वस्तु देता है। ऐसा वह तब तक नहीं कर सकता जब तक कि उसके पास स्वयं इसका साक्षात्कार न हो और इसका साक्षात्कार वह तब तक नहीं कर सकता जब तक कि वह जगत का सन्यास तथा निर्धनता का अनुसरण नहीं करता। साधक संसार का त्याग कर निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करता है। ज्योति का अवतरण एक ही दिन में नहीं हो जाता, उसको पर्याप्त समय तक प्रयास करते रहना होगा। इस संघर्ष काल में वह लोगों को कुछ भी ठोस वस्तु नहीं दे सकता। परन्तु वह उनसे भिक्षा तथा आराम के साधनों को लेता रहेगा। परन्तु फिर भी वह जनता को अपने उदाहरण के द्वारा कुछ देता जरूर है—वह संन्यास तथा निष्कामता से होने वाली शांति, तथा सुख को प्रदर्शित करता है। बाद में ज्योति प्राप्त होने पर, आत्म साक्षात्कार प्राप्त कर लेने पर वह उनको पर्याप्त आध्यात्मिक भोजन देगा। उस आध्यात्मिक भोजन के ऋण को समस्त संसार का धन भी नहीं चुका सकता। साधना में विफल होने वाला साधक भी हमको शिक्षा ही देता है। जनता को इन साधकों के प्रति सदा सहानुभूति रखनी चाहिए जो कि आध्यात्मिकता के कठिन मार्ग पर चलने के लिये प्रयत्न-

शील हैं। उनको हतोत्साहित न कर हर प्रकार से उनकी सहायता करनी चाहिये। क्या माता पिता अपने भोजन के बदले में काम कराना चाहते हैं? वे बच्चे को भोजन देते, वस्त्र देते, उसका पोषण करते, उसको शिक्षा देते हैं; किस लिये—इसलिये कि वे मनुष्य बन सकें और मनुष्य बनकर माता पिता के प्रति अपना फर्ज अदा करें। साधकों के प्रति भी लोगों का यही भाव होना चाहिये। प्राचीन काल में लोगों की ऐसी ही भावना थी। यही कारण था कि उस समय अधिक साधु थे। यदि लोग साधुओं के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करें तो मुझे निश्चय है कि दम्भी जन भी साधु बन जायेंगे।

यह समस्या जटिल है तथा इसके लिये कुशलता के साथ कार्य करना चाहिये। जनता तथा साधु की नैतिक चेतना को जाग्रत करना चाहिये, इस प्रकार अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी। बलपूर्वक क्रांति लाना कभी भी सफल नहीं हो सकता। इस देश में साधुओं को संगठित करने के लिये भी कुछ संस्थायें कार्य कर रही हैं तथा मैं भी उनको यथासम्भव हर प्रकार की सहायता दे रहा हूँ। ठोस सफलता के लिये कुछ समय तो लगेगा ही परन्तु मुझे निश्चय है कि ईश्वर की कृपा से शीघ्र ही जागरण होगा।

—:०:—

४०. रिटायर्ड लोगों के लिये सन्देश

अपनी सर्विस से रिटायर्ड होने पर आपको एक या दो महीनों के लिये प्रयाग अथवा ऋषिकेश अथवा किसी एकांत स्थान में गंगा या यमुना के किनारे साधुओं के

साथ रहना चाहिये। यदि आप स्वयं भोजन पकाना नहीं जानते तो एक रसोइया रख लीजिये। तभी आप अपने बच्चों तथा स्त्री के प्रति मोह को नष्ट कर सकते हैं। तभी आप अच्छी धारणा तथा ठोस आध्यात्मिक अभ्यास कर सकते हैं। दो महीने के बाद आप अपने घर को लौट सकते हैं। अपने घर से दूर एकांत स्थान में एक मील की दूरी पर रहिये। एक छोटी सी कुटिया बनवा लीजिये। अपने लोगों से कह दीजिये कि वे आपके पास भोजन पहुँचा दिया करें। कभी कभी आप घर पर भी भोजन कर सकते हैं। पुनः अपने एकांत कुटीर में आ जाइये। ऐसा कर लेने पर आपके परिवार के लोगों को आपसे दूर रहने का गम नहीं सतायेगा। उन्हें धक्का नहीं लगेगा आपको एकांत में आध्यात्मिक साधना करने से काफी आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हो जायेंगे। अन्त में आप बिना किसी कठिनाई के जितने वर्ष तक भी चाहेंगे एकांतवास कर सकते हैं। एकांत में रहते समय किसी भी व्यक्ति को पत्र न लिखिये। अपनी पेंशन को दान में लगाइये। जप, ध्यान, स्वाध्याय, कीर्त्तन तथा प्राणायाम में संलग्न हो जाइये। दिनचर्या तैयार कर लीजिये तथा उसका अच्छी तरह से पालन कीजिये। आपको आश्चर्यजनक आध्यात्मिक लाभ होगा।

प्रेम कीजिए। दान दीजिए। शुद्ध बनिए। ध्यान कीजिए। साक्षात्कार कीजिए। भला बनिये। भला करिए। दयालु बनिए। कारुणिक बनिए। हे वृद्ध मनुष्य! यह मनुष्य देह पाने से क्या फायदा यदि आप अपने जीवन की अन्तिम घड़ी को भजन, जप, कीर्त्तन उपासना तथा ध्यान में व्यतीत नहीं करते। मनुष्य का जन्म पाना कठिन है।

गंभीर अज्ञान की निद्रा से अब जग जाइए। इसी क्षण से साधना कीजिए। इसी जन्म में साक्षात्कार कीजिए।

—:०:—

४१. हर व्यक्ति के धर्म का सारांश

भूखे को भोजन दीजिए। नंगे को वस्त्र दीजिए। निराश्रितों को आश्रय दीजिए। निरक्षरों को शिक्षा दीजिए। बीमारों की सुश्रूषा कीजिए। पीड़ितों को आराम दीजिए। भग्न हृदयों को सान्त्वना दीजिए। दूसरों के शोक को कम कीजिए। दुःखियों के आंसू पोंछिए। उन सारे कार्यों को कीजिए जिनके द्वारा दूसरों को सुख तथा आनन्द प्राप्त हो।

अनुकूल बनिए। यथाव्यवस्थित बनिए। नुकसान सहिए। यही सर्वोच्च साधना है। विचार कीजिए। "मैं कौन हूँ"? आत्मा को जानिए तथा मुक्त हो जाइए। सेवा कीजिए।

—:०:—

४२. आध्यात्मिक केन्द्रों का संगठन

इस विश्व में सर्वत्र व्यवस्था, विधान तथा आंतरिक अनुशासन यह प्रमाणित करता है कि ईश्वर अथवा शक्ति का अस्तित्व है। पूर्ण आंतरिक आध्यात्मिक शासन व्यवस्था है। महर्षि अथवा गुरुजन, मनु अथवा बृहस्पति—ये सभी आंतरिक सरकार के ही शासक हैं। इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु आदि भी इसमें भाग लेते हैं।

आप इस विश्व के सभी विषयों का अनुभव करते हैं। आप सदा विषयों के द्रष्टा हैं। ये विषय सदा परिवर्त्तनशील हैं। परन्तु द्रष्टा कभी परिवर्त्तित नहीं होता। यह मूक साक्षी ही अमर स्वयं प्रकाश आत्मा है। यह असीम "मैं" है। आत्मा माया से मुक्त है। आत्मा निराकार निर्गुण ब्रह्म है। आत्मा अस्तित्व है। ईश्वर तथा आत्मा एक ही है। आप शक्ति को अस्तित्व से अलग नहीं कर सकते। आत्मा माया के चोगे को पहन कर ईश्वर तथा जगत के रूप में प्रकट होता है।

वास्तविक धर्म आत्म-साक्षात्कार ही है। वास्तविक धर्म इन्द्रियों तथा मन से परे है। वास्तविक धर्म आत्मा में अमर जीवन है। कर्मकाण्ड वास्तविक धर्म नहीं है। सभी धर्मों का सारतत्व एक ही है। लोगों ने वास्तविक धर्म को भुला दिया है। वे बाहरी रूप तथा कर्मकांड को ही वास्तविक धर्म मान रहे हैं। यही कारण है कि वे परम शांति तथा नित्य सुख का उपभोग नहीं कर पाते हैं। वे सदा अशांत, अतृप्त तथा विक्षिप्त से रहते हैं।

क्या केवल राजनैतिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता ही मनुष्य को सुख प्रदान कर सकती है? धन, शक्ति, नाम तथा यश—इस जगत के सारे आडम्बर आपको चिरन्तन सुख तथा शांति प्रदान नहीं कर सकते। आप शुद्धता, धारणा, ध्यान, एकता तथा योग के द्वारा ही आत्मा में पूर्ण स्वतन्त्रता, अमृतत्व तथा नित्य सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

राजनीति तथा धर्म अविभाज्य हैं। जिस देश में शांति है, जहां साधक अपनी शारीरिक आवश्यकताओं

को प्राप्त कर लेते हैं तथा जहां शासक साधुओं, संन्यासियों, ऋषियों तथा साधकों की रक्षा करते हैं वहीं पर धर्म का अभ्यास किया जा सकता है। जब देश में शांति रहेगी तभी साधुओं तथा महात्माओं के आध्यात्मिक विचारों का प्रसार हो सकेगा। दंडकारण्य में जब राक्षसों के द्वारा मुनियों पर अत्याचार होता था, तब विश्वामित्र जी ने श्रीराम की सहायता से उनको विनष्ट कराया था। आज भारत को आर्थिक, राजनैतिक, तथा सामाजिक पुनर्गठन की आवश्यकता है। भारत को व्यावसायिक तथा शिक्षा सम्बन्धी पुनर्गठन की आवश्यकता है। परन्तु इतना ही पर्याप्त न होगा। जनता को नैतिक, मानसिक, तथा आध्यात्मिक संस्कृति भी मिलनी चाहिये। तभी देश में सर्वत्र एकता तथा शांति की स्थापना हो सकती है। सभी संस्कृति, क्रांति का आधार आत्मा ही है। आत्म साक्षात्कार ही अस्तित्व का परम लक्ष्य है।

कुछ भारतीय वेदान्तियों ने जगत को मिथ्या बतलाया है अतः लोग धन की परवाह नहीं करते। उन लोगों ने आर्थिक उन्नति की उपेक्षा कर दी है। वे मुक्ति तथा आत्म-साक्षात्कार की ही कामना रखते हैं। यह विचार भारतवासियों के हृदय में गड़ा हुआ है। यही भारतीय आर्थिक पतन का कारण है। यह जगत इसी अर्थ में मिथ्या है कि यह ब्रह्म जैसा परमार्थ सत्य नहीं है। यह जगत सापेक्ष सत्य है। यह आश्रित अस्तित्व है। यह मिथ्या किसके लिये है और कब? यह मिथ्या उसके ही लिये है जो कि निर्विकल्प समाधि में स्थित है। आज के युग की आवश्यकता है—कर्म, उपासना, तथा ज्ञान के समन्वय की।

संसार में इतना युद्ध क्यों ? क्योंकि लोग विलासी जीवन के लिये धन की कामना रखते हैं। वे शक्ति चाहते हैं, वे दूसरों पर शासन करना चाहते हैं। यह जगत तीन गुणों के द्वारा बना है। अतः समय समय पर युद्ध तथा संघर्ष हुआ ही करेंगे। लोभ तथा स्वार्थ की प्रधानता होने पर विदेशी आक्रमणकारी भारत पर आक्रमण करेंगे। ऐसी हालत में भारत को सैनिक शक्ति की आवश्यकता है। अपनी रक्षा के लिये भारत को अवश्य ही सैनिक शक्ति, जल सेना तथा वायु सेना रखनी होगी। श्री शंकर को भी नागा साधुओं की सेना तैयार करनी पड़ी थी। परन्तु उनके पीछे अहिंसा की शक्ति भी काम कर रही थी। इस संकटपूर्ण स्थिति में केवल अहिंसा ही हमारी सहायता कर सकती है। हां समूची जनता को अहिंसा के मार्ग में प्रशिक्षित करना अत्यन्त कठिन है। वेदान्त का अभ्यास, दिव्य जीवन का अभ्यास, शुद्ध प्रेम तथा विश्व प्रेम के अभ्यास के द्वारा सबों में समता, शान्ति, एकता आ सकती है। हिन्दू मुसलमान झगड़ते हैं क्योंकि वे लोग बाह्य नाम रूप को ही देखते हैं। आज से ही हर व्यक्ति अपने को सच्चा वेदान्ती समझे। तब युद्ध तथा आक्रमण नहीं होंगे।

आपको आत्मत्याग की भावना का विकास करना होगा। आपको बहुत से सद्गुणों का विकास कर निवृत्ति मार्ग के लिए तैयार होना पड़ेगा। २५ वर्ष तक मनुष्य को पूर्ण ब्रह्मचारी रहना चाहिए। तब उसको विवाह कर गृहस्थाश्रम में धर्म-मार्ग पर चलने के लिये प्रवेश करना चाहिए। २५ वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहने के बाद या जब बच्चे अपने पैरों पर स्थित हो जायं—जब

वे स्वावलम्बी हो जायं तब माता पिता दोनों को ही वानप्रस्थी जीवन स्वीकार कर लेना चाहिये। तब उनको अपना सारा समय सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय तथा एकान्त के ध्यान भजन में लगाना चाहिये। बाद में वे प्रचार कार्य के लिये घूम भी सकते हैं। तभी वास्तविक संन्यास की प्राप्ति होगी। अब वे एक साथ या अलग-अलग जैसा वे ठीक समझें रह सकते हैं। राजनैतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये भी आपको अपना सब कुछ त्यागना पड़ता है। आत्म त्याग ही वास्तविक संन्यास है। आपको क्रोध, घृणा तथा लोभ का उन्मूलन करना होगा। धार्मिक अथवा राजनैतिक संन्यासी को निर्भय तथा अहिंसाव्रती होना चाहिये। संन्यासी के दो अस्त्र हैं अहिंसा तथा अभय। परन्तु अहिंसा को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। आपको मन, वचन तथा कर्मसे अहिंसा का अभ्यास करना होगा। संन्यासी तथा कर्मयोगी दोनों एक ही श्रेणी के हैं। दोनों को ही सच्चा संन्यास अथवा आत्मत्याग का जीवन बिताना चाहिये। वास्तविक संन्यास के बिना आप भौतिक स्वराज्य भी प्राप्त नहीं कर सकते। आपको निर्भय होना चाहिये। आपको धैर्य, तितीक्षा आदि गुणों का विकास करना होगा। आपको सरल जीवन बिताना चाहिये। यदि आप आत्मस्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं तो इससे बहुत अधिक त्याग की आवश्यकता है।

भारतवर्ष में साधुओं, संन्यासियों तथा अन्य सभी आध्यात्मिक केन्द्रों के संगठन तथा सुव्यवस्थित संस्थाओं के संस्थापन के लिये काफी मांग है। लोग साधारणतः कहते हैं "हां हममें मुक्ति के लिये ज्वलन्त कामना है। परन्तु इसके लिये हम कहां जायं? कौन हमारा पथ-प्रदर्शन

करेगा ? हम अपने धर्म में रुचि रखने वाले पुत्रों को आध्यात्मिक मार्ग में लगाना चाहते हैं। परन्तु अच्छी आध्यात्मिक संस्थायें हैं ही नहीं।"

बहुत से विदेशी योरोपियन, अमरीकी, जर्मन हर साल भारत में योगियों अथवा महात्माओं से मिलने तथा किसी बड़ी संस्था में प्रशिक्षित तथा दीक्षित होने के लिये आया करते हैं। वे ऋषिकेश, नासिक, प्रयाग, बनारस आदि की यात्रा करते हैं परन्तु वे कुछ मौनी तथा नंगे साधुओं को ही मिल पाते हैं जो मौनव्रत का पालन करते रहते हैं तथा इस प्रकार उनको निराश हो जाना पड़ता है। कितनी खेद पूर्ण अवस्था है ?

यद्यपि साक्षात्कार प्राप्त महात्माओं तथा सुसंगठित संस्थाओं की बहुत कमी है फिर भी इन सभी साधु संन्यासियों तथा आध्यात्मिक संस्थाओं के संगठन की बहुत आवश्यकता है। यह अनिवार्य है। जिन्होंने अपनी

करेगा ? हम अपने धर्म में रुचि रखने वाले पुत्रों को

लय की स्थापना हो जायगी। यह सारे जगत के लिये आध्यात्मिक शक्ति घर रहेगा। यदि यह सफल हुआ तो आप नव-भारत तथा जगत का निर्माण कर सकने में समर्थ होंगे। इसमें कोई भी सन्देह नहीं। आप इसी पृथ्वी पर स्वर्ग ला देंगे। सर्वत्र शांति का साम्राज्य होगा। युद्ध न होंगे। आत्मज्योति के द्वारा अज्ञान का अन्धकार विलीन हो जायगा। जगत सच्चे वेदान्ती, योगी तथा ऋषियों से पूर्ण हो जायगा। यह उन्नत सभ्यता का युग होगा। यह स्वर्ण युग होगा।

आध्यात्मिक संगठन

लोग साधारणतः कहते हैं: "यहां पर सत्तर लाख साधु हैं तथा उन साधुओं को खिलाने में करोड़ों रुपयों का व्यर्थ ही व्यय हो जाता है। हर साधु अथवा संन्यासी समाज के लिये जोंक के समान है। संन्यासी को भी कांग्रेस क्षेत्र में काम करना चाहिये। एकांत जीवन अथवा संन्यासाश्रम अथवा निवृत्ति मार्ग की कोई आवश्यकता नहीं। हमें तो काम करने वाले व्यक्ति चाहियें।"

यह भारी भूल है। यह गलत धारणा है। यह गणना भी गलत है। संन्यासियों की सूची में भिखारियों को भी शामिल कर लिया गया है। सच्चे संन्यासी तो बहुत ही कम हैं। उनको अंगुलियों पर गिना जा सकता है। सच्चा संन्यासी ही इस जगत में प्रबल शक्ति है। वह कभी भी कुछ लेता नहीं है। वह सदा देता ही है। संन्यासियों ने भूतकाल में महान् कर्मों को किया था। संन्यासीजन ही वर्त्तमान काल में भी आश्चर्य कर सकते हैं। संन्यासी ही वर्त्तमान तथा भविष्य में चमत्कार दिखा सकते हैं।

जब तक यह दुनियां है श्री शंकर का नाम कभी भी मिट नहीं सकता। स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, श्री रामकृष्ण परमहंस आदि ने ही हिंदू धर्म को बचाये रखा था। संन्यासी ही सच्चा लोक संग्रह कर सकता है क्योंकि उसने अपना पूरा जीवन इसके लिये अर्पित कर दिया है। एक सच्चा संन्यासी भी सारे जगत के भाग्य को बदल सकता है। महान् शंकर ने अकेले ही वेदांत के अद्वैत दर्शन की स्थापना की। वे अभी भी हमारे हृदयों में जीवित हैं। परमहंस जन कुछ रोटियों पर ही अपना जीवन निर्वाह करते थे और इसके के लिये वे द्वार-द्वार पर जाकर वेदांत, उपनिषद्, रामायण तथा भागवत के उपदेश को भारत के कोने-कोने में प्रसारित करते थे यह सारा जगत उनका भारी ऋणी है। उनके लेख आज भी हमारे लिये पथ-प्रदर्शन का कार्य करते हैं। अवधूत गीता के कुछ श्लोकों को पढ़िये। आप शीघ्र ही ईश्वरीय ज्योति तथा महिमा की ऊँचाइयों की ओर उन्नत हो जायेंगे। आप परिवर्त्तित हो जायेंगे। दुर्बलता, उदासी, विपत्ति आदि सब जाती रहेंगी।

जिस तरह विज्ञान, मनोविज्ञान, प्राणी विज्ञान, दर्शन आदि के लिये रिसर्च विद्वान हैं। उसी तरह वैसे ही योगियों तथा संन्यासियों की भी आवश्यकता है जो पूरा समय देकर अध्ययन तथा ध्यान के द्वारा आत्मा का अनुसंधान करें। ये उन्नत योगी जगत को अपने अनुभव तथा धर्म के क्षेत्र में अपने साक्षात्कारों को देंगे। वे साधकों को प्रशिक्षित कर उनको प्रचारार्थ भेजेंगे।

गृहस्थों, जमींदारों, राजाओं तथा महाराजाओं का यह कर्त्तव्य है कि वह इन संन्यासियों की देखरेख करें

इसके बदले में संन्यासी उनकी आत्मा की रक्षा करेंगे। इस तरह से जगत-चक्र सुगमतापूर्वक चलता रहेगा। इस भूमि में शांति की स्थापना हो जायगी।

हर धर्म में संन्यासियों का दल है। वे लोग एकांत में तथा ध्यान में अपना जीवन बिताते हैं। बौद्ध धर्म में भिक्षु हैं। इस्लाम धर्म में फकीर, सूफीमत में सूफी फकीर, तथा ईसाई धर्म में फादर तथा रेवरेंड हैं। यदि आप इन संन्यासियों को हटा दें तो धर्म की महिमा नष्ट हो जायगी। ये लोग ही संसार के धर्म की रक्षा करते हैं। ये लोग ही गृहस्थों को कष्ट में सान्त्वना प्रदान करते हैं। ये ईश्वरीय ज्ञान तथा शांति के संदेशवाहक हैं। ये आध्यात्मिक तथा औपनिषदिक ज्ञान के प्रचारक हैं। वे रोगियों को रोग मुक्त करते, अवसन्नों को सान्त्वना देते, लाचारों की सेवा करते हैं। वे वेदांत के प्रचार तथा तत्वमसि महावाक्य की शिक्षा के द्वारा, निराशों को आशा देते, अवसन्नों को प्रसन्न करते, दुर्बलों को बतलाते, तथा कायरों में साहस का संचार करते हैं।

राजनैतिक स्वराज्य मिल गया है। परंतु क्या इसके द्वारा वास्तविक शाश्वत शांति मिल सकती है? क्या राजनैतिक स्वराज्य मानव कष्टों तथा अज्ञान का निवारण कर सकता है? क्या यह राजनैतिक स्वराज्य जीवन की समस्याओं का समाधान कर सकेगा? यह मनुष्य को कुछ अधिक आराम दे सकता है—कुछ अधिक मक्खन, रोटी तथा जैम। परंतु मनुष्य, फिर भी दुखी बना रहेगा। क्योंकि वह अविद्या में निमग्न है। उसमें आत्मज्ञान नहीं है। आत्मज्ञान ही वास्तविक तथा स्थाई सुख प्रदान कर सकता

है। आत्मस्वराज्य ही मनुष्य को वास्तव में अमर बना डालता है। आत्मस्वराज्य मनुष्य को वास्तविक स्वतंत्रता तथा पूर्ण तुष्टि प्रदान करता है।

जो लोग राजनैतिक क्षेत्र में काम करते हैं उन्हें भी गीता तथा उपनिषदों के प्रकाश में ही जीवन यापन करना चाहिये। उनमें भी नैतिक प्रशिक्षा, आत्मसंयम, आत्मत्याग, आध्यात्मिक अनुशासन, तथा स्वरूप का ज्ञान होना चाहिये। तब उनको आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिये। उन्हें गीता में वर्णित तीन प्रकार के तप—शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तप का अभ्यास करना चाहिये। उन्हें चिंतन के द्वारा यह ज्ञान स्पष्ट हो जाना चाहिये कि आत्मा अमर है, जगत मिथ्या स्वभाव का है, आत्मा एक है, जीवन एक है। उन्हें समझ लेना चाहिये कि सारा जगत एक परिवार ही है। तभी वे वास्तव में देश की तथा स्वयं की सेवा कर सकते हैं।

साधुओं तथा संन्यासियों को नवीन ढंग से संगठन की आवश्यकता है; यही आज की परमावश्यकता है। उनका सम्यक् संगठन होना चाहिये। केन्द्रीय प्रधान कार्यालय सुशिक्षित संन्यासियों को प्रचार करने के लिये भेजे। जिन्हें इस केन्द्रीय कार्यालय से स्वीकृति प्राप्त हो वे ही प्रचार कार्य के लिये योग्य समझे जायं। उनकी देखरेख आध्यात्मिक समिति करेगी। एक धार्मिक समिति सभी मठ मन्दिरों तथा आश्रम आदि की सम्पत्ति पर नियन्त्रण रखेगी। आजकल धन का बहुत अपव्यय होता है। उचित आर्थिक नियंत्रण के द्वारा ही धार्मिक संस्थाओं को अच्छी तरह से चलाया जा सकता है। तभी सच्चे

तथा सुयोग्य प्रचारकों को प्रशिक्षित किया जा सकता है। तभी जनता की सच्ची सेवा की जा सकेगी। कौन यह करेगा? संन्यासी या सरकार? पारस्परिक संगठन या राजनीति? सन्मति या शक्ति?

यह स्वर्गीय वाणी है। इस कार्य को संन्यासी ही करें। पारस्परिक सहयोग के द्वारा यह कार्य सुगम हो जायगा। इसमें शीघ्र ही सफलता की प्राप्ति भी होगी। सन्मति के द्वारा इस कार्य में शीघ्र प्रगति होगी तथा अच्छा परिणाम होगा।

संन्यासी वीरतापूर्वक इस कार्य को शीघ्र अपने हाथ में लें। यदि सच्चा प्रयास तथा पूर्ण संलग्नता है तो सफलता निश्चित है। सत्य की ही सदा विजय होती है। झूठ कभी विजयी नहीं हो सकता। ये संन्यासी जो दिव्य ज्ञान के भण्डार हैं, जो सत्य के संदेशवाहक हैं, जगत के लिये प्रकाश स्तम्भ हैं, तथा जो सनातन धर्म के केंद्रीय स्तम्भ हैं, वे जगत के विभिन्न राष्ट्रों का पथ-प्रदर्शन करें।

—:o:—

४३. धर्म के विषय में मेरे विचार

भारत सुन्दर वाटिका है जिसमें सहनशीलता, सदाचार, प्रेम, तथा परोपकार के प्रचुर पुष्प खिले हैं। विश्व बन्धुत्व, मानवजाति की एकता के बीज से अध्यात्म तथा ईश्वर साक्षात्कार के फल लगे हुये हैं। भारतवर्ष अपनी सांस्कृतिक परम्परा के कारण सबों को सन्मार्ग दिखा सकता है तथा सबों के लिये सम्पत्ति, शांति, तथा शाश्वत सुख के मार्ग को प्रशस्त कर सकता है। भारत की सांस्कृतिक

एकता, भारत की राष्ट्रीय योग्यता, उसकी आध्यात्मिक संस्कृति तथा प्राचीन अनुभूत मार्ग मानव जाति के भाग्य का निर्माण कर सकते हैं। राम अथवा युधिष्ठिर के आदर्श पर चल कर ही भारत अपनी आध्यात्मिक संस्कृति का पोषण कर सकता है। भारतवर्ष धर्म भूमि है, उसका स्वास धर्म है, उसका जीवन तथा ज्योति भी धर्म है। यह धर्म में ही स्थित है। धर्म भारत की रक्षा करता है। भारत भी धर्म की रक्षा करता है।

आज के पदार्थवादी युग में श्रुति तथा स्मृति के आदेशों पर चलना आसान नहीं है। परन्तु फिर भी प्राचीन आध्यात्मिक तत्वों की पूर्णतः उपेक्षा कर भौतिकवाद का अन्धानुगमन करना भी कोई बुद्धिमानी नहीं है। इन दोनों के बीच स्वर्णिम माध्यम है। इस कार्य के लिये उन संतों तथा महात्माओं की सन्मति लेनी चाहिये जिन्होंने कि साधनामय जीवन के द्वारा जीवन के सभी रहस्यों का पता लगा लिया है तथा जो साक्षात्कार प्राप्त हैं।

राष्ट्रों की प्रगति का लक्ष्य एक ही है। इस लक्ष्य की एकता के आधार पर ही राष्ट्रों के बीच मतभेद को दूर किया जा सकता है। धर्म किसी वर्ग विशेष की संपत्ति नहीं है। धर्म तो सनातन नियम है जिस पर यह जगत आधारित है तथा जिसके द्वारा यह जगत अनुशासित है। क्रिया तथा प्रतिक्रिया के नियम, अथवा कर्मफल के नियम, मृत्यु अथवा पुनर्जन्म के नियम इस धर्म में ही सन्निहित हैं।

माता पिता, शिक्षक, तथा अन्य समाज के निष्काम्य सेवक जनता के चरित्र का निर्माण करें। वे धर्म के स्तंभ हैं। धर्म असीम को ले जाने वाला मार्ग है। अतः इसके

असीम रूप हैं। एकम् सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। इसी धर्म के कारण सभी व्यक्ति यद्यपि वे वास्तवतः अलग अलग हैं, एक पूर्ण ईश्वर के साथ सम्बद्ध हैं। अहिंसा, सत्यम्, ब्रह्मचर्य, प्रेम, बन्धुत्व, सदाचार तथा जो कुछ भी शुभ है वह धर्म ही है। धर्म राष्ट्र, जगत तथा विश्व का नियंत्रण करता है।

अनुकरणीय आदर्श ही धर्म है। राष्ट्र का कल्याण जीवन की कला में ही निहित है। श्री रामचन्द्र, युधिष्ठिर, विक्रमादित्य जैसे सनातन धर्म के प्रतिनिधियों में इस जीवन कला की अभिव्यक्ति हुई। धर्म वह मार्ग है जिसके द्वारा हम अपने जीवन के परम लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होते हैं। मनुष्य में प्रसुप्त शक्ति तथा क्षमता को व्यक्त करना तथा उसे ईश्वर की ओर अग्रसर करना ही धर्म है। धर्म वह है जो निर्वाण सुख के मार्ग को प्रशस्त करे। मन, वाणी तथा कर्म के द्वारा ही इस मार्ग की प्रशस्ति है। दिव्य जीवन ही धर्म है। पूर्ण नैतिक तथा सदाचारमय जीवन ही धर्म है। आत्मवत् सर्वभूतानि—सबों के प्रति अपनी आत्मा के समान प्रेम रखना ही धर्म है। मानव जाति में ईश्वर की सेवा करना धर्म है, दान देना धर्म है। नम्रता, आत्मसंयम, मन की शुद्धि, ज्ञान तथा ईश्वर पर ध्यान—ये धर्म के उन्नत रूप हैं। पूर्ण सदाचारमय जीवन जो कि आध्यात्मिक दृष्टि पर आधारित है, धर्म है।

धर्म का चिन्ह है आचार। आचार ही सज्जनों का लक्षण है। आचार प्रभवो धर्म। धर्म के द्वारा जीवन का निखार होता है। मनुष्य धर्म के अभ्यास के द्वारा सन्मति, यश, इहलौकिक, पारलौकिक महिमा प्राप्त करता

है। आचार सर्वोच्च धर्म है। यह सारे तपों की जड़ है। जिसके द्वारा मनुष्य का कल्याण होता है वह धर्म है। धर्म जगत को धारण करता है। सभी धर्म पर आधारित हैं। जिसके द्वारा सभी भूतों की रक्षा होती है वही धर्म है। धर्म से नित्य सुख तथा अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

नीति ही धर्म का द्वार है। जो व्यक्ति नैतिक अथवा सदाचारमय जीवन व्यतीत करता है वह मुक्ति पूर्णता तथा मोक्ष प्राप्त कर लेगा।

—:•:—

ध्यान का अभ्यास

प्रखर विद्वान, शक्तिशाली नेता, वीर योद्धा तथा महान् सन्त — ये सभी मानवजाति के ही हैं। उन लोगों ने जो कुछ भी किया है वैसा आप भी कर सकते हैं। परन्तु हां, इसके लिये आपको मन का दमन, उसकी बिखरी हुई किरणों को एकाग्र कर ध्यान अथवा अभ्यास के द्वारा उद्देश्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना होगा।

ध्यान करते समय योगी भी ऐसा ही करते हैं। वे शक्ति से पूर्ण रहते है। उनके व्यक्तित्व में अद्भुत आकर्षण होता है। वे आशीर्वाद के द्वारा व्याधियों का निवारण कर देते हैं। इन सब का कारण यही है कि वे ध्यान करते हैं। समाधि में ईश्वर के साथ एकता का साक्षात्कार कर वे दिव्य ज्योति तथा शान्ति को बिखेरते है। सन्त के समक्ष आपकी विपत्तियां विलीन हो जाती हैं तथा आपके सन्देह दूर हो जाते हैं। समाधि ही ध्यान की चरम अवस्था है।

परन्तु इसे आप न भूलें कि ध्यान योग की सातवीं सीढ़ी है। योग पातंजलि महर्षि द्वारा स्थापित पूर्णतः वैज्ञानिक प्रणाली है। यह सबों के लिए है यह किसी भी धर्म अथवा मत के द्वारा

सीमित नहीं । हर व्यक्ति को ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। वास्तव में सारे महापुरुष, चाहे जीवन के किसी भी क्षेत्र में वे क्यों न हों, ध्यान का अभ्यास करते हैं। उनको अपने कर्त्तव्य में इतनी भक्ति होती है कि उनके लिए ध्यान करना सहज तथा अनायास ही हो जाता है। आध्यात्मिक साधक को ध्यान का अभ्यास अवश्य करना चाहिये। सर्व प्रथम उसे छः सीढ़ियों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

ध्यान की तैयारी

यम तथा नियम प्रथम दो सीढ़ियां हैं। उनका आपके आचरण से सम्बन्ध है। मलिन मन दुर्बल संकल्प शक्ति के कहने में नहीं आता। यह अपनी मनमानी करता है। शुद्ध मन संकल्प शक्ति के अनुसार चलता है तथा यह आपको ज्ञान शक्ति, आनन्द एवं शान्ति के आन्तरिक साम्राज्यों की ओर ले जा सकता है। शुद्धता आवश्यक है । यम तथा नियम कि पहली दो सीढ़ियों के द्वारा मन शुद्ध हो जाता है। सत्यवादी बनिये। सबों से प्रेम कीजिये। शुद्ध बनिये। दूसरों के धन का लोभ न कीजिए। उदार बनिए। धन जमा न कीजिए। भीख न मांगिये। दूसरों की दया का दास न बनिए। जो कुछ भी आपके पास है उसी में संतुष्ट रहिये। सफाई के नियमों का पालन कीजिये। सन्तोष को विकसित कीजिये। सरल जीवन बिताइए। सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय कीजिये। तथा

ईश्वर के नाम का जप कीजिए। ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मार्पण कीजिये। तथा उसकी कृपा प्राप्त कीजिए। यही यम नियम है।

तीसरी सीढ़ी है आसन। किसी भी सुखद शारीरिक स्थिति को आसन कहते हैं। आपको एक ही आसन में बहुत देर तक बैठने का अभ्यास होना चाहिये। पद्मासन इसमें सहायक है।

पद्मासन—बैठ जाइये तथा पैरों को आगे फैलाइए। दाहिने पैर के दोनों हाथों से पकड़ लीजिये तथा घुटने पर पैर को मोड़ते हुए उसे बाईं जांघ की जड़ लगा दीजिये। इसी प्रकार बायें पैर को मोड़ कर दाहिने जांघ पर रख दीजिये। शरीर को सीधा रखिए तथा अपने हाथों को एड़ियों के बीच में एक के ऊपर दूसरा रखिये अथवा घुटनों पर रख कर चिन्मुद्रा लगाइये।

यदि आसन सुगम, स्थिर तथा सुखद हो तो आप शीघ्र ही शरीर को भूल जायेंगे। चौथी सीढ़ी प्राणायाम है। श्वास का मन के साथ गहरा सम्बन्ध है। जब आप गम्भीर रूप से विचारते हैं तब स्वास धीमी पड़ जाती है। मन में अशांति आने पर स्वास भी अशान्त हो जाती है। यदि आप स्थिरतापूर्वक तालबद्ध रूप से गम्भीर स्वास लेने एवं छोड़ने का अभ्यास करें तो वृत्तियां धीमी पड़ जायगीं तथा मन सुगमतापूर्वक एकाग्र हो जायगा। दाहिनी नासिका को बन्द कर बाईं नासिका से गम्भीरता पूर्वक धीरे धीरे किसी

प्रकार का भी शब्द न करते हुए स्वास लीजिये। कुछ क्षणों के लिए स्वास को रोके रखिए। तब दाहिनी नासिका से स्वास को धीरे धीरे छोड़ दीजिये। अब दाहिनी नासिका से स्वास लीजिए। रोके रखिए तथा बाई नासिका से धीरे धीरे छोड़ दीजिये। इतना एक प्राणायाम है। ऐसा कुछ प्राणायाम कर लेने से आपको ध्यानावस्था प्राप्त हो जायगी।

जब मन इधर उधर दौड़ता नहीं तब पांचवीं सीढ़ी प्रत्याहार की बारी आती है। मन विषय पदार्थों से हट जाता है। ईश्वर के नाम का जप इसमें सहायक है। हृदय में ईश्वर के चित्र पर ध्यान करना इसमें सहायक है। मनको प्रलोभन देकर अन्तर्मुखी बनाना चाहिए। यदि अन्दर नाम तथा रूप दिया गया तो यह मन उसमें संलग्न होकर बाहर की ओर न भटकेगा।

वाह्य विषयों से मन की किरणों को हटा कर उन्हें हृदयके अन्दर ईश्वर की मूर्ति पर एकाग्र करना चाहिए। यही धारणा है। जब तक कि आप को मन पर किसी हद तक अधिकार प्राप्त न हो जाय तब तक ईश्वर की मूर्ति अथवा चित्र के सामने बैठ कर एकटक से उस पर देखिए तथा साथ ही उस देवता के मन्त्र का मानसिक जप कीजिये। मन के स्थिर हो जाने पर आंखें बन्द कर लीजिए तथा हृदय में मूर्त्ति का दर्शन कीजिये। मानसिक जप करते रहिए। यदि मन भागना चाहे तो उसके

लिये कुछ काम दीजिये। मंत्र के हर जप के साथ भगवान के चरणों में एक मानसिक फूल चढ़ाइये। इस तरह व्यस्त होकर मन दौड़ना बन्द कर देगा।

धारणा के बाद ध्यान की बारी आती है। समाधि में ध्यान समाप्त हो जाता है। धारणा का अभ्यास इस प्रकार है जैसे किसी महल के सामने खड़ा होकर उसे एकाग्र चित्त से देखना। ध्यान उस महल में प्रवेश करने के समान है। आप महल में ही घूमते हैं परन्तु सदा महल के भीतर ही रहते हैं। आप महल के सारे आन्तरिक रहस्यां को जानने लगते हैं। समाधि राजा की प्राप्ति के समान है जो महल का मालिक है। आत्मा ही वह राजा है।

आपका एकमेव लक्ष्य ईश्वर

धारणा, ध्यान तथा समाधि के द्वारा किसी भी वस्तु का छिपा हुआ रहस्य प्रगट हो जायगा। इससे आप विचित्र मानसिक, बौद्धिक एवं यौगिक शक्तियों को प्राप्त करेंगे। परन्तु इनके कारण रास्ता न भूलिए। आपका लक्ष्य बहुत ऊंचा है। मोक्ष ही आपका लक्ष्य है। एकमेव ईश्वर पर ही ध्यान कीजिये।

धारणा तथा ध्यान के दैनिक अभ्यास के लिए बैठ कर ईश्वर की स्तुति के रूप में कुछ स्तोत्रों का पाठ कीजिये। ओ३म् का कुछ बार जप कीजिये। प्राणायाम के द्वारा निद्रा अथवा आलस्य को दूर भगा दीजिये। आंखों को ईश्वर

के चित्र पर एकाग्र कर ईश्वर के नाम का जप करना शुरू कर दीजिये। वह चित्र आपके लिये जीवित सा मालूम पड़ना चाहिए। ईश्वर से बातें कीजिये। उससे प्रार्थना कीजिये। उसकी कृपा के लिये याचना कीजिये। तब आंखें बन्द कर हृदय में उस चित्र का चित्रण कीजिये। वहीं उसकी पूजा कीजिये। धारणा कीजिये, ध्यान कीजिये। ईश्वर का साक्षात्कार कीजिये।

साधना में संलग्न रहिये। एक दिन के लिए भी अभ्यास न छोड़िये। इस कार्य के लिये एक अलग कमरा रख छोड़िये। वहां ध्यान के वातावरण का निर्माण होगा। ज्यों ही आप कमरे में घुसेंगे त्यों ही आपको ध्यान करने की इच्छा होगी। इसके लिये विशेष समय को भी नियुक्त कर दीजिये।

साथ ही साथ यम, नियम के अर्जन पर भी ध्यान दीजिये। विषय सुखों की लालसा जितनी कम होगी, विषय पदार्थों के साथ आपकी आसक्ति जितनी स्वल्प होगी उतना अधिक आप ध्यान में गहरा घुस सकेंगे तथा शीघ्र ही ईश्वर सक्षात्कार प्राप्त कर सकेंगे।

ध्यान का प्रारम्भ कैसे करें ?

प्रातः चार बजे उठ कर जल्दी मुंह को धो लीजिये। यदि सम्भव हो तो स्नान भी कर लीजिए। ब्रह्ममुहूर्त (चारसे छः बजे तक प्रातः) को ध्यान में ही लगाना चाहिए। इष्ट देवता के

सामने बैठ कर निम्नांकित प्रार्थनाओं का पाठ कीजिये। सुविधा के लिए कुछ प्रार्थनायें नीचे दी जारही हैं।

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ॥

अथ :— प्रातः समय मैं उस आत्मा का स्मरण करता हूं जो मेरे हृदय के प्रकोष्ठों में विभासित है जिसका स्वरूप सच्चिदानन्द है तथा जो परम-हंसों का लक्ष्य है। जो तुरीयावस्था है। मैं वही ब्रह्म हूं जो निर्गुण तथा नित्य, जो जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति से परे है मैं भूतों का संघात नहीं हूँ

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण
यं नेति-नेति वचनैर्निगमा अवोचु-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्रयम् ॥

अर्थ :—प्रातः समय मैं उसका भजन करता हूं जो देवों का देव है, जो मन तथा वाणी की की पहुँच से परे है तथा जिसकी कृपा से ही वाणी विभासित होती है जिसे सद्ग्रन्थ नेति-नेति कहकर पुकारते हैं जो अज, अच्युत तथा पुरातन पुरुष है।

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।

यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्ज्वां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै ॥

अर्थः— प्रातः समय मैं उस परमात्मा को नमस्कार करता हूं जो अन्धकार से परे है । जो सूर्य के समान प्रकाशमान है जो पूर्ण तथा नित्य है तथा जिसमें यह जगत उसी प्रकार प्रतीत होता है जैसे सर्प रज्जु में ।

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम्
प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ॥

अर्थः— जो इन श्लोकों का पाठ करता है— ये श्लोक जो पुण्यप्रद हैं, जो तीनों लोकों के भूषण हैं — वह परम पद को प्राप्त कर लेता है ।

शान्ति पाठ

इस के बाद निम्नांकित शान्ति मन्त्रों का पाठ कीजिये । ये मन्त्र अन्दर एवं बाहर की सारी बाधाओं को दूर कर देते हैं ।

ओ३म् शन्नो मित्रः शंवरुणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अर्थ—हमारे लिये मित्र, वरुण तथा अर्यमा देवता कल्याणप्रद हों । हमारे लिये इन्द्र, तथा

वृहस्पति एवं विशाल डगों वाले विष्णु कल्याणकारी हों। ब्रह्म को नमस्कार हे! वायुदेव, तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। तुमको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा। मैं तुम्हें ऋत् एवं सत्य नाम से पुकारूँगा। वह परमेश्वर मेरी तथा मेरे आचाय की रक्षा करे। वह मेरे आचार्य की रक्षा करे।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ सहनावधतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीत मस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

वह परमात्मा हम दोनों (गुरु तथा शिष्य) की रक्षा करे। हम दोनों मुक्ति के सुख को भोगें। हम दोनों शास्त्रों के तात्पर्य को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हों। हमारे अध्ययन सफल हों। हम कदापि एक दूसरे से झगड़ा न करें।

परम गुरु की स्तुति

तदनन्तर अपने गुरु का स्मरण कीजिए तथा मानसिक नमस्कार करते हुए अपने गुरु के प्रति निम्नांकित स्तुति का पाठ कीजिये।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं
द्वंद्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

मैं उस गुरु को नमस्कार करता हूँ जो परम अस्तित्व है जो तीनों गुणों से परे है, सारे मानसिक भावों से अतीत है, सबों के अन्तःकरण का साक्षी है, अचल तथा शुद्ध है, एक तथा नित्य है, जो द्वंद्वों से अतीत है, गगन के समान व्यापक है, तत्वमसि के लक्ष्यार्थ द्वारा प्राप्य है जो ब्रह्म का सुख है, जो परम सुख को प्रदान करने वाला है, जो केवल ज्ञान की मूर्त्ति है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

गुरु ब्रह्म है, गुरु विष्णु है, गुरु शिव है, गुरु साक्षात् परब्रह्म है। उस गुरु को नमस्कार।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

उस गुरु को नमस्कार जो ज्ञान रूपी अंजन के द्वारा अज्ञानान्ध लोगों के नेत्रों को खोलता है।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥

गुरु की मूर्त्ति ही ध्यान का मूल है, गुरु के पैर पूजा के मूल हैं। गुरु के उपदेश सारे मंत्रों के मूल हैं। गुरु की कृपा ही मोक्ष का मूल है।

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्त्तये
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥

उस गुरु शिव को नमस्कार जो सच्चिदानन्द का स्वरूप है। जो प्रपंच रहित, शान्त, आधार रहित तथा ज्योतिर्मय है

कीर्तन

इसके बाद धीमे स्वर से निम्नांकित कीर्त्तन कीजियेः—

जय गणेश जय गणेश जय गणेश पाहिमाम् ।
श्री गणेश श्री गणेश श्री गणेश रक्षमाम् ॥
जय सरस्वति जय सरस्वति जय सरस्वति पाहिमाम् ।
श्री सरस्वति श्री सरस्वति श्री सरस्वति रक्षमाम् ॥
शरवणभव शरवणभव शरवणभव पाहिमाम् ।
सुब्रह्मण्य सुब्रह्मण्य सुब्रह्मण्य रक्षमाम् ॥
जय गुरु शिव गुरु हरि गुरु राम ।
जगद्गुरु परमगुरु सद्गुरु श्याम ॥
आदिगुरु अद्वैतगुरु आनन्दगुरु ॐ ।
चिद्गुरु चिद्घनगुरु चिन्मयगुरु ॐ ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
नमः शिवाय नमः शिवाय नमः शिवाय ।
नमः शिवाय नमः शिवाय नमः शिवाय ॥
दत्तात्रेय दत्तात्रेय दत्तात्रेय पाहिमाम् ।
दत्तगुरु दत्तगुरु दत्तगुरु रक्षमाम् ॥
आंजनेय आंजनेय आंजनेय पाहिमाम् ।
हनुमन्त हनुमन्त हनुमन्त रक्षमाम् ॥
गंगारानी गंगारानी गंगारानी पाहिमाम् ।
भागीरथी भागीरथी भागीरथी रक्षमाम् ॥
ॐ तत्सत् ॐ तत्सत् ॐ तत्सत् ॐ ।
ॐ शांतिः ॐ शांतिः ॐ शांतिः ॐ ॥

ज प

तदनन्तर कुछ मिनटों तक ॐ का गम्भीर जप कीजिये । प्रणव के स्पन्दन आपके सारे फेफड़े में भर जाने

चाहिये। एकाग्र मन होकर इस ध्वनि का श्रवण कीजिये। ऐसी भावना कीजिये कि यह ध्वनि आपके हृदय अथवा नाभि से निकल रही है भावना कीजिये कि यह ध्वनि आपके सारे शरीर में व्याप्त हो रही है। यह ध्वनि गंभीर तथा स्पन्दित होनी चाहिये। यदि साथ ही साथ अपने मन को भी ध्वनि के साथ एकाग्र करेंगे तो मन शीघ्र ही शान्त हो जायगा। दूसरी बात याद रखने योग्य यह है कि 'ॐ' का उच्चारण दीर्घ, 'म' ध्वनि के साथ करना चाहिये। म ध्वनि धीरे धीरे हृदय में बिलीन हो जानी चाहिये। इस प्रकार मन हृदय में स्थिर हो जायगा।

उसी स्वर में अपने इष्ट मंत्र का भी उच्चारण कीजिये। कुछ मिनटों तक मंत्र को बोल कर जप कीजिये। जप करते समय अपनी आंखों को इष्टदेवता के चित्र पर स्थिर रखिये। इसके अनन्तर कुछ मिनटों तक मंत्र को धीमे धीमे कहिये। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आन्तरिक श्रोत्रेन्द्रिय अथवा कान भीतरी मंत्र को सुनता रहे तथा आंखें स्थिरतापूर्वक चित्र को देखती रहें। आंखें खुली रखें तथा साथ ही आन्तरिक चक्षु से इष्टदेवता के चित्र का हृदय में अवलोकन करें। अन्दर मंत्र ध्वनि को सुनने से मन अन्तर्मुखी हो जायगा। कुछ अभ्यास के अनन्तर यह आन्तरिक अवलोकन सहज हो जायगा। जब आप ईश्वर के चित्र को अपने हृदय के अन्दर स्पष्ट रूप से देख सकें तब आपकी धारणा पूर्णतः आन्तरिक हो जाती है। तब आप आंखें बन्द करना ही पसन्द करेंगे। आंखों को बन्द कर लीजिये तथा मानसिक जप कीजिये।

ध्यानाभ्यास करते समय मंत्र जप को स्वास के साथ सम्बन्धित कीजिये मंत्र को दो भागों में बांट डालिए—

एक भाग को स्वास लेते समय तथा दूसरे भाग को स्वास छोड़ते समय मन ही मन कहिये। उदाहरणतः यदि आपका मंत्र 'ॐ नमो नारायणाय' है तो स्वास लेते समय 'ॐ नमो' कहिए तथा स्वास छोड़ते समय 'नारायणाय' कहिए। यदि बारम्बार इसका अभ्यास किया गया तो आपकी स्वास स्वतः जप करने लगेगी। तथा यह जप अहर्निश चलता रहेगा।

जप के द्वारा स्वतः ही ध्यान की प्राप्ति हो जायगी। ईश्वर की कृपा आपको ध्यान में सफलता देगी तथा आप समाधि को प्राप्त कर लेंगे।

अन्य आवश्यक बातें

यदि बुरे विचार मन में घुसें तो उनका जरा भी ध्यान न दीजिये। अनिमन्त्रित अतिथियों की भांति उन्हें स्वतः लौट जाने दीजिये। अपने हृदय में ईश्वर के चित्र का दर्शन, साथ ही साथ जप को बनाये रखिए। यदि मन भटकने लगे तो मानसिक पूजा कीजिये। अथवा पुनः आंखें खोल कर अपने समक्ष मूर्त्ति पर ध्यान कीजिये।

शरीर तथा मन का शिथिल होना आवश्यक है। कहीं पर भी तनाव नहीं होना चाहिये। शरीर की स्थिति स्थिर होनी चाहिये तनी हुई नहीं। मन सुगमता पूर्वक चित्र पर एकाग्र रहे अन्यथा अन्य वाह्य विचार भी मन के साथ चिपक जायेंगे। संसार को भूल जाइए तथा ईश्वर के चरणों को ही पकड़े रहिए।

ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था में ऐसा हो सकता है कि ज्यों ही मन एकाग्र होने लगे और आप जप करना

प्रारम्भ करें त्यों ही कोई व्यवहार की बात आपको याद आ जाय। यदि वह बात दैनिक जीवन के लिये महत्वपूर्ण है तो आप उसे याद रखना चाहेंगे जिसके कारण आपका मन ध्यान से विचलित हो जायगा। अतः ध्यान की प्रारम्भावस्था में आप अपने निकट कागज पेन्सिल रख सकते हैं तथा इस तरह की बात को उस पर नोट कर लीजिए और पुनः निश्चिन्त होकर ध्यान में लग जाइए। बाधाओं को दूर करने के लिए अपनी सहज बुद्धि का प्रयोग कीजिए।

किसी भी कारणवश प्रातः ध्यान को न छोड़िए। नियंत समय से पहले ध्यान को छोड़ कर न उठ जाइए। यदि आपका मन यह जान ले कि आप उससे कठिन कार्य लेने वाले हैं तो वह चुपचाप आज्ञा मानने लगेगा।

विश्व-प्रार्थना

अभ्यास के अन्त में आसन से उठने से पहले निम्नांकित प्रार्थना कीजिए—

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है!!
तुम सच्चिदानन्द घन हो।
तुम सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।
हममें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो,
हमें आध्यात्मिक शक्ति का वर दो।

जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ तथा द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से पूर्ण हो।
सब नाम रूपों में तुम्हारा ही दर्शन करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
तुम्हारी ही महिमा का गायन करें।
केवल तुम्हारा ही नाम हमारे अधर पर हो।
हम सदा तुममें ही निवास करें।

तदनन्तर सबों के स्वास्थ्य, सुख, शान्ति एवं कल्याण के लिये प्रार्थना कीजिये—

ॐ सर्वेषां स्वस्तिर्भवतु
सर्वेषां शान्तिर्भवतु
सर्वेषां पूर्णं भवतु
सर्वेषां मंगलं भवतु
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चित्दुखभाग्भवेत्।
असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय।
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

दैनिक जीवन

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अभ्यास के अनंतर एकाएक व्यवहार कार्य में नहीं लगना चाहिए। आंखें

खोलने के बाद कम से कम पांच मिनट के अनन्तर आसन से उठिये। सारे समय जप करते रहिए। उठने के पश्चात् धीरे धीरे कमरे में टहलिए। पांच मिनट और टहलते हुए जप करते रहिए। फिर कमरे से बाहर आइए।

दिन में जब कभी सम्भव हो आंखें बन्द कर मन को जगत से खींच कर इष्ट मंत्र का जप करते हुए कुछ क्षणों के लिए ईश्वर पर ध्यान कीजिए। इस प्रकार ध्यानके प्रवाह को बनाए रखिए। आत्मसंयम अथवा इन्द्रिय तथा मन का निग्रह ध्यान में सफलता पाने के लिए अनिवार्य है। अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा ही मन को वशीभूत किया जा सकता है। भगवान कृष्ण के उपदेश को याद रखिए—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

योग उसके लिये नहीं जो अधिक खाता है और न उसके लिये है जो खाता ही नहीं। योग उसके लिए नहीं जो अधिक सोता है और उसके लिए नहीं जो कि सोता ही नहीं।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

जो साधक आहार, विहार, कर्म, सोने तथा जागने आदि में युक्त है अथवा मध्यम पथ का अनुयायी है उसका योगाभ्यास दुखों को नष्ट करने वाला होता है।

अतः—

थोड़ा खाना, थोड़ा पीना
थोड़ा बोलना, थोड़ा सोना

थोड़ा मिलना, थोड़ा घूमना
थोड़ी सेवा, थोड़ा विश्राम
थोड़ा आसन करो, प्राणायाम थोड़ा
चिन्तन थोड़ा, ध्यान करो थोड़ा
जप करो थोड़ा, कीर्त्तन करो थोड़ा
मन्त्र लिखो थोड़ा, सत्संग थोड़ा

यदि आपका जीवन सुसयमित है तथा यदि आप समन्वय योग का अभ्यास करते हैं तो आपको शीघ्र सफलता मिलेगी। हठयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग का समन्वय कीजिये। आपका सर्वांगीन विकास होगा। ईश्वर तथा गुरु की कृपा के बिना आप गंभीर ध्यान में प्रवेश नहीं कर सकते। अतः कदापि जप तथा उपासना का त्याग न कीजिये। कुछ आसनों (शीर्षासन, सर्वांगासन आदि) तथा सूर्य नमस्कार के नियमित अभ्यास द्वारा सुन्दर स्वास्थ्य बनाये रखिये। मानव जाति की निष्काम्य सेवा के द्वारा आप अपने ध्यानाभ्यास में उन्नति को माप सकेंगे। यदि आपका ध्यान गम्भीर है तो आप करुणा तथा सेवा भाव से ओतप्रोत बने रहेंगे तथा सबों में ईश्वर की सत्ता का भान करेंगे। भले कर्म कीजिए। ईश्वर आशीर्वाद आपको प्राप्त हो।

—:०:—

योग वेदान्त

(हिन्दी मासिक पत्र)

संस्थापक—श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सम्पादक—श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द सरस्वती

वार्षिक चंदा: ३रु० ७५ नये पैसे; एक प्रति ३५ न० पै० (वी० पी० द्वारा मंगाने से डाक व्यय अतिरिक्त)

यह पत्र शिवानन्द साहित्य का अनमोल रत्न है।

"योग वेदान्त आरण्य एकैडेमी" का मुख पत्र होने से इसमें सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिकयोग और वेदान्त विषयक सुबोधगम्य सामग्री रहती है।

योग के जटिल अर्थ को साधारण जन समाज में सरल रीतियों से समझाने के लिए यह उत्तम माध्यम है। अपने पवित्र विचारों को लेकर यह पत्र नवीन आध्यात्मिक युग का शंख प्रघोषित करता है।

इस पत्र में सर्व साधारण के लेखों को प्रकाशित नहीं किया जाता है। किन्तु अनुभव के आधार पर जो लेख लिखे गए हों और जिनके विचारों की पृष्ठभूमि ठोस और प्रमाणिक हो, ऐसे लेखों को ही इस पत्र में प्रकाशित किया जाता है। जीवनोपयोगी व्यावहारिक सिद्धान्त को प्रकट करने वाले लेख पत्र में अवश्य प्रकाशित किये जाते हैं।

यह पत्र किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं करता, किन्तु विश्वात्म-भावना के उद्देश्य को अंगीकार कर, केवल उसी सिद्धान्त का हर रीति से प्रतिपादन करता है।

चंदा और पत्र व्यवहार इस पते से कीजिये···

योग-वेदान्त, शिवानन्द नगर (ऋषिकेश)